



कृषक संदेश

अक्टूबर 2026, अंक 69 वर्ष 13



बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर



बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर (भागलपुर) Bihar Agricultural University, Sabour (Bhagalpur)

डॉ. डी. आर. सिंह
कुलपति
Dr. D. R. Singh
Vice Chancellor



Mob. No. : 7070425151
Phone : 0641 - 2452606 (0)
Fax : 0641 - 2452604
Patna : 0612 - 2222267 (0)
Fax : 0612 - 2225364
E-mail : vcbausabour@gmail.com
: vc@bausabour.ac.in
Website : www.bausabour.ac.in

पत्रांक/Ref. : 434/vcc

दिनांक/Date : 14.10.2026

संदेश

प्रिय किसान भाइयों/बहनों,

यह मेरे लिए अत्यंत प्रसन्नता एवं संतोष का विषय है कि बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर द्वारा रबी मौसम की प्रमुख फसलों एवं कृषि तकनीकों पर केन्द्रित "कृषक संदेश-रबी विशेषांक" का प्रकाशन किया जा रहा है। यह विशेषांक किसानों, कृषि विद्यार्थियों, प्रसार कार्यकर्ताओं तथा कृषि क्षेत्र से जुड़े सभी हितधारकों के लिए उपयोगी एवं वैज्ञानिक जानकारी का सरल माध्यम बनेगा। विश्वविद्यालय का सदैव यह प्रयास रहा है कि कृषि वैज्ञानिकों द्वारा विकसित नवीनतम तकनीकों एवं अनुसंधानों को किसानों तक सरल भाषा में पहुँचाया जाए, ताकि कृषि को अधिक लाभकारी, टिकाऊ एवं जलवायु-अनुकूल बनाया जा सके।

रबी मौसम बिहार की कृषि अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस मौसम में गेहूँ, मक्का, चना, मसूर, मटर, सरसों, राई, तोरिया, अलसी एवं कुसुम की खेती की जाती है। इन फसलों की अधिक उत्पादकता एवं लाभप्रदता के लिए उन्नत किस्मों का चयन, गुणवत्तापूर्ण बीज, संतुलित एवं समेकित पोषक तत्व प्रबंधन, उचित सिंचाई, खरपतवार एवं कीट-रोग प्रबंधन तथा समय पर कृषि कार्यों का संपादन अत्यंत आवश्यक है। बदलती जलवायु एवं प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते दबाव को देखते हुए जल एवं पोषक तत्वों के कुशल उपयोग के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य का संरक्षण भी हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।

इस रबी विशेषांक में वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों द्वारा रबी फसलों की उन्नत उत्पादन तकनीक, मृदा एवं पोषक तत्व प्रबंधन, परिशुद्ध खेती द्वारा पोषक तत्व प्रबंधन, सिंचाई एवं जल प्रबंधन, खरपतवार प्रबंधन, कीट एवं रोग प्रबंधन, प्राकृतिक एवं जैविक कृषि, फसल विविधीकरण, संरक्षण कृषि, जलवायु-स्मार्ट कृषि तथा आधुनिक एवं सटीक कृषि तकनीकों से संबंधित उपयोगी जानकारी सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत की गई है। साथ ही, किसानों की आय बढ़ाने, उत्पादन लागत कम करने तथा उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के कुशल उपयोग की दृष्टि से विभिन्न तकनीकी विकल्पों पर भी प्रकाश डाला गया है।

मेरा विश्वास है कि यह विशेषांक किसानों को "सही समय पर सही तकनीक" अपनाने में मार्गदर्शन प्रदान करेगा और रबी फसलों की उत्पादकता, गुणवत्ता एवं आर्थिक लाभ में वृद्धि करने में सहायक सिद्ध होगा। कृषि विद्यार्थियों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं के लिए भी इसमें संकलित सामग्री ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी होगी।

मैं इस विशेषांक के प्रकाशन में योगदान देने वाले सभी वैज्ञानिकों, प्रसार विशेषज्ञों, संपादकीय मंडल एवं सहयोगियों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ देता हूँ। आशा है कि "कृषक संदेश-अक्टूबर रबी विशेषांक" किसानों एवं कृषि समुदाय के बीच वैज्ञानिक कृषि ज्ञान के प्रसार का प्रभावी माध्यम बनेगा।

अंत में, मैं बिहार एवं देश के सभी किसान भाइयों एवं बहनों को समृद्ध, सफल एवं लाभकारी रबी फसल के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित,

(डी० आर० सिंह)
कुलपति

कृषक संदेश
अक्टूबर-2026, अंक-69, वर्ष-13

प्रेरणास्त्रोत :
श्री विजय कुमार सिन्हा
माननीय मंत्री, कृषि विभाग, बिहार

संरक्षक :
कुलपति, प्रो. (डॉ.) डी. आर. सिंह
बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

मार्गदर्शन :
डॉ. आर. के. सोहाने
निदेशक प्रसार शिक्षा, बि.कृ.वि., सबौर (भागलपुर)
डॉ. आर. एन. सिंह
सह निदेशक प्रसार शिक्षा, बि.कृ.वि., सबौर (भागलपुर)

सम्पादक :
डॉ. संजय कुमार
विश्वविद्यालय प्राध्यापक एवं अध्यक्ष,
सस्य विज्ञान विभाग, बि.कृ.महा., सबौर (भागलपुर)
डॉ. अभय मानकर
उप निदेशक प्रशिक्षण, बि.कृ.वि., सबौर (भागलपुर)
डॉ. श्रुति सुमन
सहायक प्राध्यापक, सस्य विज्ञान विभाग, बि.कृ.महा., सबौर
डॉ. सीमा
सहायक प्राध्यापक, सस्य विज्ञान विभाग, बि.कृ.महा., सबौर

तकनीकी आलेख :
बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर के सस्य विज्ञान विभाग सहित विश्वविद्यालय के अंगीभूत महाविद्यालयों एवं
अन्य संस्थानों के वैज्ञानिकगण

विषय सूची

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	पोटैशियम नाइट्रेट ($KNO_3-13:0:45$) के पर्णिय छिड़काव द्वारा बिहार में जलवायु-अनुकूल गेहूँ उत्पादन।	1-4
2.	धान-गेहूँ फसल प्रणाली में संसाधन संरक्षण तकनीकें।	5-7
3.	मक्का में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं प्रबंधन।	8-13
4.	रबी मक्का में एडिटिव अंतरफसली खेती : बिहार के लिए जलवायु-स्मार्ट विविधीकरण की एक प्रभावी रणनीति।	14-22
5.	परिवर्तनशील जलवायु परिस्थितियों में दलहनी फसलों की उत्पादन क्षमता एवं संभावनाएँ।	23-30
6.	रबी दलहनी फसलों में खरपतवार प्रबंधन	31-37
7.	बिहार में दलहनी फसलों की वैज्ञानिक खेती	38-43
8.	दलहनी एवं तिलहनी फसलों का उत्पादन बढ़ाने में मीडिया आधारित रणनीति की भूमिका	44-49
9.	राष्ट्रीय पोषण सुरक्षा में दलहन एवं तिलहन फसलों की भूमिका।	50-55
10.	भारत में दलहनों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की दिशा में रबी दलहनी फसलों की उत्पादकता बढ़ाने की रणनीतियाँ।	56-58
11.	बिहार में बदलती जलवायु परिस्थितियों के संदर्भ में मक्का आधारित अंतःफसली खेती।	59-63
12.	खरपतवारों के प्रबंधन में फसल चक्र एवं फसल विविधीकरण की भूमिका	64-69
13.	रबी फसलों में समेकित एवं परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन।	70-75
14.	फॉल आर्मी वर्म (सैनिक कीट) से मक्का फसल की सुरक्षा : एक समेकित मार्गदर्शिका।	76-79
15.	अनाज वाली फसलों (Cereal) में पोषक तत्वों का अवशोषण एवं प्रबंधन	80-85
16.	संरक्षित खेती : कृषकों के लिए लाभदायक विकल्प	86-91

पोटैशियम नाइट्रेट (KNO_3 -13:0:45) के पर्णीय छिड़काव द्वारा बिहार में जलवायु-अनुकूल गेहूँ उत्पादन

¹अर्णब रॉय चौधरी, ²श्रुति सुमन, ³शिवशंकर आचार्या, ⁴संजय कुमार, ⁵बीरेंद्र कुमार एवं ⁶सुशांत

⁴ एवं ⁵विश्वविद्यालय प्राध्यापक-सह-मुख्य वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

^{1, 3} एवं ⁶संबद्ध प्राध्यापक-सह-वरीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

²सहायक प्राध्यापक-सह-कनीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

1. पृष्ठभूमि एवं औचित्य

बिहार में मुख्य रूप से धान-गेहूँ फसल चक्र का प्रभुत्व है, जो लगभग 20 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में फैला हुआ है। इस प्रणाली में गेहूँ की बुवाई अक्सर देरी से होती है, जिसके मुख्य कारण लंबी अवधि वाले धान की देर से कटाई या खेत में अत्यधिक नमी का होना है। बिहार में देर से बोए जाने वाले गेहूँ का कुल क्षेत्रफल लगभग 16.8 से 17.9 लाख हेक्टेयर है, जो राज्य के कुल गेहूँ क्षेत्र का लगभग 75% से 80% हिस्सा है और यह 38 जिलों में फैला है।

इस पछेती गेहूँ को मार्च के पहले से दूसरे सप्ताह में उच्च वायुमंडलीय तापमान (अधिकतम तापमान $>35^{\circ}\text{C}$; औसत तापमान $>20-22^{\circ}\text{C}$) का सामना करना पड़ता है। यह समय गेहूँ के फूल आने (एंथेसिस) तथा दाना भरने की संवेदनशील अवस्था के अनुकूल होता है। तापमान में यह अचानक वृद्धि दाना भरने की प्रक्रिया को बाधित करती है। उच्च तापमान पौधे के चयापचय (मेटाबॉलिज्म) को तेज कर देता है, जिससे दानों में कार्बोहाइड्रेट संचय का समय बहुत घट जाता है। परिणामस्वरूप पत्तियाँ समय से पहले पीली पड़ जाती हैं और दाने सिकुड़कर हल्के रह जाते हैं। इस स्थिति को टर्मिनल हीट स्ट्रेस (आखरी समय का ताप तनाव) कहा जाता है, जो गेहूँ की उपज में 18% से 34% तक की गिरावट का मुख्य कारण बनता है।

हीट स्ट्रेस के दौरान मिट्टी से पोषक तत्वों और पानी का अवशोषण धीमा पड़ जाता है, अतः जल-घुलनशील पोषक तत्वों का पर्णीय छिड़काव (फोलियर स्प्रे) एक त्वरित समाधान प्रदान करता है। पोटैशियम नाइट्रेट (KNO_3 -13:0:45) का छिड़काव पत्तियों के माध्यम से सीधे आवश्यक पोटैशियम और नाइट्रेट आयन प्रदान करता है, जो फसल को ताप तनाव से सुरक्षा देकर जलवायु-अनुकूल बनाता है।

- **पोटैशियम (K^+)** : एक प्रभावी ऑस्मोरेग्युलेटर के रूप में कार्य करता है, जो पत्तियों में जल दबाव बनाए रखता है और वाष्पोत्सर्जन को नियंत्रित करने के लिए रंध्रों (स्टोमेटा) के खुलने-बंद होने का नियमन करता है।
- **नाइट्रेट (NO_3^-)** : प्रकाश संश्लेषण को निरंतर बनाए रखने के लिए तत्काल नाइट्रोजन प्रदान करता है।

ये दोनों तत्व मिलकर कैनोपी (फसल आवरण) का तापमान कम करते हैं और दाना भरने की अवधि को बढ़ाते हैं।

2. बिहार में लक्षित कृषि पारिस्थितिकी

यह तकनीक बिहार के तीनों प्रमुख कृषि-जलवायु क्षेत्रों (जोन-I, II और III) के 38 जिलों में फैले लगभग 16.8–17.9 लाख हेक्टेयर पछेती गेहूँ क्षेत्र के लिए उपयुक्त है :

- **पछेती जलोढ़ मिट्टी क्षेत्र** : गंगा नदी के दोनों किनारों के उपजाऊ मैदानी इलाके जहाँ देर से बुवाई होती है और मार्च-अप्रैल में तापमान 35°C से ऊपर पहुँच जाता है।
- **कम नमी एवं हल्की बनावट वाली मिट्टी** : उत्तर-पूर्व जलोढ़ मैदान (जोन II) के रेतीली-दोमट मिट्टी वाले क्षेत्र, जहाँ जल धारण क्षमता कम होती है और बसंत ऋतु में चलने वाली पछुआ गर्म हवाओं (लू) से फसल तेजी से सूखने लगती है।

3. संभावित लाभार्थी एवं प्रभाव

बिहार का कृषि परि-श्य लघु व सीमांत किसानों पर आधारित है, इसलिए इस तकनीक का प्रभाव अत्यंत व्यापक है:

- **विशाल कृषक आधार**: गेहूँ बिहार के सकल फसली क्षेत्र का 28% और रबी मौसम का 70% से अधिक हिस्सा कवर करता है। राज्य के लगभग 57.3 लाख किसान गेहूँ उगाते हैं, जिनमें से 80% से अधिक लघु व सीमांत हैं।
- **उपज अंतर (Yield Gap) में कमी**: सामान्य किसानों के खेतों और प्रदर्शन भूखंडों के बीच 1.2 टन प्रति हेक्टेयर का उपज अंतर है, जिसे प्रतिकूल मौसम में भी इस छिड़काव द्वारा पाटा जा सकता है।

प्रमुख आर्थिक एवं उत्पादन लाभ:

- **उपज में वृद्धि**: सामान्य पद्धतियों की तुलना में 10% से 18% की वृद्धि (2 से 5 क्विंटल/हेक्टेयर अतिरिक्त उपज)।
- **उच्च लाभ-लागत अनुपात (B:C Ratio)**: 1.72 से 2.49।
- **कैनोपी तापमान में कमी**: फसल आवरण के तापमान में 9°C तक की गिरावट।

4. तकनीक का विस्तृत विवरण

तकनीकी विनिर्देश:

- **सामग्री**: पूर्णतः जल-घुलनशील क्रिस्टलीय पोटैशियम नाइट्रेट (KNO_3 - 13:0:45)।
- **पोषक तत्व संरचना**: 13% नाइट्रेट नाइट्रोजन (NO_3^-) एवं 45% घुलनशील पोटैश (K_2O)।

चरणबद्ध प्रयोग विधि:

• **घोल तैयार करना:** प्रति एकड़ 200 लीटर पानी में 4.0 किग्रा पोटेशियम नाइट्रेट (2.0% सांद्रता) घोलें। एकसमान घोल बनाने हेतु पहले 4 किग्रा पाउडर को एक बाल्टी पानी में अलग से अच्छी तरह घोल लें, फिर उसे स्प्रे टैंक में मिलाएँ।

छिड़काव का समय:

• **पहला छिड़काव:** बूटिंग अवस्था (जब ध्वज पत्ती के आवरण के अंदर बाली फूलती है – बुवाई के 55–65 दिन बाद)।

• **दूसरा छिड़काव:** फूल आने (एंथेसिस) की अवस्था पर (पहले छिड़काव के 10–15 दिन बाद)।

• **छिड़काव विधि:** पत्तियों पर एकसमान फैलाव के लिए फ्लैट-फैन नोजल युक्त नैपसैक स्प्रेयर का उपयोग करें। छिड़काव हमेशा सुबह के समय या शाम को ढलती धूप में करें।

5. आर्थिक विश्लेषण

5.1 प्रति एकड़ तकनीक की लागत

घटक	विवरण	लागत (रु०/एकड़)
पोटेशियम नाइट्रेट (13:0:45)	8 किग्रा. जल-घुलनशील KNO_3 @ रु० 200/किग्रा.	1,760
मजदूरी एवं स्प्रेयर शुल्क	दो बार पर्णीय छिड़काव @ रु० 450 प्रति स्प्रे	900
कुल निवेश लागत	पोटेशियम नाइट्रेट + छिड़काव लागत	रु० 2,660

5.2 तुलनात्मक बजट एवं शुद्ध लाभ (प्रति एकड़)

वित्तीय मानक	बिना तकनीक (तनावग्रस्त फसल)	पर्णीय छिड़काव के साथ (13:0:45)	शुद्ध अंतर/लाभ
औसत उपज	26.0 क्विंटल	29.5 क्विंटल	+3.5 क्विंटल (~13.5% वृद्धि)
कुल मूल्य (सरकारी MSP पर)	रु० 67,210	रु० 76,258	+₹9,048 (सकल आय)
तकनीक की लागत	रु० 0	रु० 2,660	-₹2,660 (अतिरिक्त व्यय)
शुद्ध वृद्धिशील लाभ	आधारभूत लाभ	रु० 6,388	₹6,388 (अतिरिक्त शुद्ध लाभ)

आर्थिक व्यवहार्यता संकेतक:

- **अतिरिक्त शुद्ध लाभ:** ₹2,660 की लागत लगाकर किसान ₹6,388 प्रति एकड़ का अतिरिक्त शुद्ध मुनाफा प्राप्त कर सकते हैं।
- **सीमांत लाभ—लागत अनुपात (BCR):** 2.40 (यानी तकनीक पर खर्च किए गए प्रत्येक ₹1.00 पर किसान को ₹2.40 मूल्य का अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त होता है)।

निष्कर्ष :

पछेती गेहूँ में बूटिंग (बुवाई के 55—65 दिन बाद) एवं एंथेसिस अवस्था (बूटिंग के 10—15 दिन बाद) पर पोटैशियम नाइट्रेट (13:0:45) का 2% पर्णीय छिड़काव बिना किसी अतिरिक्त सिंचाई के टर्मिनल हीट स्ट्रेस के दुष्प्रभावों को कम करने का एक अत्यंत प्रभावी, किफायती एवं कृषक—अनुकूल उपाय है। बिहार में गेहूँ की उत्पादकता बढ़ाने के लिए यह तकनीक बड़े पैमाने पर अपनाए जाने योग्य है।

धान-गेहूँ फसल प्रणाली में संसाधन संरक्षण तकनीकें

¹पायल कुमारी, ²सुशान्त एवं ³स्वराज कुमार दत्ता

^{1,2}सहायक प्राध्यापक-सह-कनीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर
³संबद्ध प्राध्यापक-सह-वरीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, डॉ. कलाम कृषि महाविद्यालय, किशनगंज

1. परिचय

धान-गेहूँ फसल प्रणाली (Rice-Wheat Cropping System) दक्षिण एशिया, विशेषकर भारत के इंडो-गंगा मैदानी इलाकों (IGP) की प्रमुख कृषि प्रणाली है। यह प्रणाली देश की खाद्य सुरक्षा और करोड़ों लोगों की आजीविका का मुख्य आधार है। हालाँकि, पिछले कुछ दशकों में हरित क्रांति के दौरान अपनाए गए गहन कृषि अभ्यासों और पारंपरिक तरीकों के कारण इस प्रणाली में संसाधनों का अत्यधिक दोहन हुआ है। इस स्थिति से निपटने के लिए संसाधन संरक्षण तकनीकें (Resource Conservation Technologies & RCTs) टिकाऊ और पर्यावरण-अनुकूल खेती के लिए अनिवार्य आवश्यकता बन गई हैं।

2. समस्या

धान-गेहूँ चक्र में मुख्य समस्या यह है कि यह प्रणाली अत्यधिक संसाधन-गहन (Resource & intensive) है।

जल संकट: धान में पारंपरिक कदवा (Puddling) विधि के कारण भूजल का अनियंत्रित दोहन हो रहा है।

मिट्टी का क्षरण: निरंतर कदवा करने से मिट्टी में एक सख्त परत (Hardpan) बन जाती है, जो अगली गेहूँ की फसल की जड़ों के विकास और पानी के रिसाव (Percolation) को नुकसान पहुँचाती है।

लागत और ऊर्जा की खपत: बार-बार गहरी जुताई करने से ईंधन (डीजल) और श्रम की भारी खपत होती है, जिससे खेती की लागत लगातार बढ़ रही है।

फसल अवशेष प्रबंधन: धान की कटाई और गेहूँ की बुवाई के बीच समय कम (10-15 दिन) होने के कारण किसान धान की पराली को खेतों में जलाते हैं।

3. कारण और प्रभाव

मुख्य कारण

पारंपरिक पद्धतियाँ : किसानों में यह गलत धारणा कि बिना जुताई और बिना खेत में पानी भरे अच्छी उपज नहीं मिल सकती।

सस्ती ऊर्जा/बिजली सब्सिडी: ट्रैक्टर चलाने के लिए मुफ्त या रियायती बिजली के कारण जल संरक्षण के प्रति जागरूकता की कमी।

मशीनीकरण की कमी: कटाई के बाद अवशेषों के इन-सिटू (In-situ) प्रबंधन के लिए आधुनिक मशीनों की सीमित उपलब्धता।

दुष्प्रभाव

भूजल स्तर का तेजी से गिरना: पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के कई हिस्सों में भूजल स्तर प्रतिवर्ष खतरनाक दर से नीचे जा रहा है।

वायु प्रदूषण: पराली जलाने से जहरीला धुआँ और स्मॉग बनता है, जो जन स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

मृदा स्वास्थ्य का गिरना: मिट्टी में जैविक कार्बन (Organic Carbon) और लाभदायक सूक्ष्मजीवों का नष्ट होना।

ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन: कदवा वाले धान के खेतों से मीथेन (CH_4) और पराली जलाने से कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) का भारी उत्सर्जन, जो जलवायु परिवर्तन को बढ़ावा देता है।

4. संभावित समाधान: संसाधन संरक्षण तकनीक

धान-गेहूँ प्रणाली की उत्पादकता बनाए रखते हुए प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए निम्नलिखित समाधानों को एकीकृत रूप से अपनाना आवश्यक है:

धान की फसल हेतु तकनीकें:

धान की सीधी बुवाई (Direct Seeded Rice & DSR): बिना नर्सरी और बिना कदवा किए सीड ड्रिल मशीन से सीधी बुवाई करना। इससे 15–25% पानी और 30–40% श्रम की बचत होती है।

अल्टरनेट वेटिंग एंड ड्रायिंग (AWD): खेत में लगातार पानी भरने के बजाय सूखने पर सिंचाई करना, जिससे 20–30% पानी की बचत और मीथेन उत्सर्जन में कमी आती है।

गेहूँ की फसल हेतु तकनीकें :

जीरो-टिलेज (Zero & Tillage /Happy Seeder/ Smart Seeder) : धान के अवशेषों को बिना जलाए, बिना जुताई किए गेहूँ की सीधे बुवाई करना। इससे ईंधन की बचत होती है और बुवाई का समय सही रहता है।

एकीकृत संसाधन प्रबंधन :

लेजर लैंड लेवलिंग (Laser Land Leveling) : खेत को पूरी तरह समतल करना, जिससे सिंचाई के पानी की 20% बचत और फसल के समान विकास में मदद मिलती है।

फसल विविधीकरण एवं हरी खाद : धान-गेहूँ चक्र के बीच मूँग, उड़द या ढेंचा की फसल शामिल करना ताकि मिट्टी की उर्वरता प्राकृतिक रूप से बढ़े।

फसल अवशेष प्रबंधन- मिट्टी व पर्यावरण संरक्षण : जिन क्षेत्रों में धान की कटाई कंबाइन मशीन द्वारा की जाती है वहाँ पर आगामी फसल लेने के लिए किसान भाई पुआल को जलाने के लिए बाध्य होते हैं। परिणामस्वरूप पोषक तत्वों का एक बहुमूल्य खजाना जलकर राख हो जाता है तथा निकले हुए धुएँ से पर्यावरण प्रदूषण होता है और ग्लोबल वार्मिंग का खतरा बढ़ता जाता है। इस समस्या के समाधान के लिए हैप्पी सीडर वह टर्बो सीडर नामक मशीनें विकसित की गई हैं जो क्रमशः 4 टन प्रति हेक्टेयर व 6 टन पुआल को खेत में रखते हुए गेहूँ की बुवाई कर सकती हैं।

5. निष्कर्ष

धान-गेहूँ फसल प्रणाली में प्राकृतिक संसाधनों का तेजी से घटता स्तर हमारी भविष्य की खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर चेतावनी है। संसाधन संरक्षण तकनीकों (RCTs) जैसे- DSR, जीरो-टिलेज और लेजर समतलीकरण को व्यापक पैमाने पर अपनाकर जल, मृदा और पर्यावरण का प्रभावी संरक्षण संभव है।

मक्का में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण एवं प्रबंधन

प्रदीप कुमार, स्वीटी कुमारी और श्राधे श्याम सिंह

सहायक प्राध्यापक—सह—कनीय वैज्ञानिक, वीर कुँवर सिंह कृषि महाविद्यालय, डुमराँव, बक्सर

परिचय

मक्का खरीफ मौसम में उगाई जाने वाली प्रमुख खाद्यान्न फसलों में से एक है। इसके दानों का उपयोग विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ तैयार करने के साथ-साथ अनेक औद्योगिक एवं अन्य उपयोगों में भी किया जाता है। देश के विभिन्न भागों, विशेषकर उत्तर भारत में इसकी व्यापक रूप से खेती की जाती है। मक्का किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण एवं लाभकारी फसल है, लेकिन इसकी अधिक उत्पादन क्षमता प्राप्त करने के लिए संतुलित पोषण प्रबंधन आवश्यक है।

फसल में पोषक तत्वों की कमी होने पर पौधों में कई विशिष्ट लक्षण दिखाई देते हैं। खेत में दिखाई देने वाले इन लक्षणों को कई बार रोग, कीट अथवा प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों से उत्पन्न लक्षण समझ लिया जाता है, क्योंकि इनके लक्षणों में कुछ समानताएँ हो सकती हैं। इसलिए केवल बाहरी लक्षणों के आधार पर पोषक तत्वों की कमी का अंतिम निर्धारण करना उचित नहीं है। इसकी पुष्टि पौधे के ऊतक परीक्षण, रासायनिक विश्लेषण अथवा मृदा परीक्षण के माध्यम से की जानी चाहिए।

नाइट्रोजन की कमी

नाइट्रोजन की कमी होने पर मक्का के पौधों की पत्तियाँ सामान्य की तुलना में छोटी तथा हल्के हरे रंग की दिखाई देती हैं। पुरानी पत्तियों में पीलेपन की शुरुआत पत्ती के सिरे से होती है और धीरे-धीरे यह मध्य शिरा के दोनों ओर बढ़ते हुए अंग्रेजी के 'V' आकार का रूप ले लेती है। बाद में पत्तियाँ नीचे की ओर से सूखने लगती हैं और उनका रंग भूरा अथवा मटमैला हो सकता है। सूखने की प्रक्रिया धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ती है।



नाइट्रोजन कमी लक्षण

प्रबंधन

फसल की आवश्यकता एवं मृदा परीक्षण के आधार पर नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। उपलब्ध सामग्री के अनुसार मक्का में लगभग 120–150 किग्रा नाइट्रोजन प्रति

हेक्टेयर देने की सलाह दी गई है। नाइट्रोजन की कुल मात्रा को विभाजित करके देने से पौधों को उनकी विभिन्न विकास अवस्थाओं में आवश्यक पोषण उपलब्ध कराया जा सकता है।

बुवाई के समय कुल नाइट्रोजन का लगभग 10 प्रतिशत भाग कतारों में 6–8 सेंमी गहराई पर सीड ड्रिल अथवा देशी हल की सहायता से देना चाहिए। शेष मात्रा को फसल की अवस्था के अनुसार विभाजित करके प्रयोग करें—

- लगभग 20 प्रतिशत नाइट्रोजन चार पत्ती वाली अवस्था में दें।
- लगभग 30 प्रतिशत नाइट्रोजन आठ पत्ती वाली अवस्था में दें।
- लगभग 30 प्रतिशत नाइट्रोजन पुष्पन अवस्था में दें।
- शेष 10 प्रतिशत नाइट्रोजन दाना भरने की अवस्था में दें।

फॉस्फोरस की कमी

फॉस्फोरस की कमी में पौधों की पत्तियाँ सामान्य से अधिक गहरे हरे रंग की हो सकती हैं। पत्तियों के सिरे एवं किनारों पर लाल या बैंगनी रंग विकसित हो सकता है। पौधों की वृद्धि धीमी पड़ जाती है और जड़ों का विकास भी प्रभावित हो सकता है।



प्रबंधन

स्रोत सामग्री में 40–60 किग्रा फॉस्फोरस/हेक्टेयर देने का उल्लेख है। इसकी पूरी मात्रा बुवाई के समय कतारों में लगभग 6–8 सेंमी गहराई पर देने की अनुशंसा की गई है।

पोटैशियम की कमी

पोटैशियम की कमी से पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है तथा गांठों का विकास अपेक्षाकृत कम हो जाता है। इसकी कमी के प्रारंभिक लक्षण निचली पत्तियों के किनारों पर दिखाई देते हैं। पहले किनारे पीले पड़ते हैं और बाद में गहरे भूरे रंग में बदलकर सूखने लगते हैं। पत्तियों का यह सूखना झुलसन जैसा दिखाई दे सकता है।



प्रबंधन

पोटैशियम की कमी की स्थिति में लगभग 30–40 किग्रा पोटैशियम प्रति हेक्टेयर देने की अनुशंसा की गई है। इसकी पूरी मात्रा बुवाई के समय कतारों में लगभग 6–8 सेमी गहराई पर सीड ड्रिल अथवा देशी हल की सहायता से मिट्टी में मिला दें।

जिंक की कमी

मक्का में जिंक की कमी होने पर पत्तियों पर प्रारंभ में हल्की धारियाँ दिखाई देती हैं। समय के साथ ये धारियाँ सफेद या पीले रंग में परिवर्तित हो जाती हैं। सामान्यतः ये धारियाँ पत्ती की मध्य शिरा के दोनों ओर मध्य भाग से आधार तक फैली हुई दिखाई देती हैं। इस प्रकार के लक्षणों को श्वेत कलिका रोग के रूप में भी वर्णित किया गया है।



प्रबंधन

जिंक की कमी वाली फसल में लगभग 25 किग्रा जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय मिट्टी में देना चाहिए।

मैग्नीशियम की कमी

मैग्नीशियम की कमी के लक्षण मुख्य रूप से पौधों की निचली और पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं। इन पत्तियों पर शिराओं के बीच सफेद या पीली धारियाँ विकसित हो जाती हैं, जबकि पत्तियों की शिराएँ सामान्यतः हरी बनी रहती हैं। कमी अधिक बढ़ने पर पुरानी पत्तियाँ लाल रंग की हो सकती हैं। अत्यधिक कमी की स्थिति में छोटे पौधों की ऊपरी पत्तियाँ भी पीली पड़ने लगती हैं।



प्रबंधन

मैग्नीशियम की कमी को दूर करने के लिए 10 किग्रा मैग्नीशियम सल्फेट को 100 गैलन पानी में घोलकर पत्तियों पर छिड़काव किया जा सकता है। इससे पौधों को शीघ्रता से मैग्नीशियम उपलब्ध कराने में सहायता मिलती है।

कैल्शियम की कमी

मक्का में कैल्शियम की कमी के लक्षण सामान्यतः कम दिखाई देते हैं। प्रभावित पौधों की पत्तियाँ पूरी तरह खुल नहीं पातीं और सीढ़ी के समान एक-दूसरे से चिपकी हुई दिखाई दे सकती हैं। रोगग्रस्त अथवा प्रभावित पौधों की पत्तियों में पीला-हरा रंग विकसित हो जाता है।



विशेष सावधानी : कैल्शियम और बोरॉन की कमी के कुछ लक्षण समान हो सकते हैं, इसलिए केवल –श्य लक्षण के आधार पर निदान न करें।

सल्फर की कमी

सल्फर की कमी से मक्का के पौधों में बौनापन दिखाई दे सकता है और पौधे सामान्य अवस्था की तुलना में देर से परिपक्व होते हैं। इस स्थिति में नाइट्रोजन की कमी के विपरीत, नई पत्तियों में पीलापन अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। महत्वपूर्ण-गंधक की कमी नाइट्रोजन की कमी जैसी दिखाई दे सकती है, लेकिन गंधक की कमी में लक्षण अपेक्षाकृत नई पत्तियों में अधिक स्पष्ट होते हैं।



लौह की कमी

लौह की कमी होने पर नई विकसित होने वाली पत्तियों की शिराओं के बीच तथा पत्ती के किनारों पर पीला-हरा से सफेद रंग दिखाई दे सकता है। यह लक्षण सामान्यतः क्षारीय मिट्टी को छोड़कर अन्य परिस्थितियों में कम दिखाई देता है।

मैंगनीज की कमी

मक्का में मैंगनीज की कमी के लक्षण अपेक्षाकृत कम स्पष्ट होते हैं। प्रभावित पत्तियाँ गहरे रंग की तथा हल्की धारियों वाली दिखाई दे सकती हैं। आगे चलकर पत्तियों पर सफेद धारियाँ विकसित होती हैं और मध्य भाग का रंग भूरा पड़ने लगता है।

तांबे की कमी :- तांबे की कमी के कारण मक्का की पत्तियों में सबसे पहले पीलापन दिखाई देता है। गंभीर कमी की स्थिति में पौधों की वृद्धि रुक जाती है और वे पोटैशियम की कमी से प्रभावित पौधों की तरह बौने दिखाई दे सकते हैं। नई पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं, जबकि पुरानी पत्तियों में अपेक्षाकृत कम प्रभाव दिखाई देता है।

बोरॉन की कमी :- मक्का में बोरॉन की कमी के लक्षण सामान्यतः प्रारंभिक अवस्था में दिखाई देते हैं। नई पत्तियों पर शिराओं के बीच अनियमित आकार के सफेद धब्बे बन सकते हैं। समय के साथ ये धब्बे आपस में मिलकर सफेद धारियों का रूप ले लेते हैं। प्रभावित पौधों में पत्तियों अथवा अन्य वृद्धि संबंधी भागों की लंबाई में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पाती।

मोलिब्डेनम की कमी :- मोलिब्डेनम की कमी की स्थिति में पुरानी पत्तियाँ उनके सिरे और किनारों से सूखने लगती हैं। कमी बढ़ने पर पत्तियों की शिराओं के बीच का भाग भी प्रभावित होकर सूख सकता है। नई पत्तियों में मुरझाने जैसे लक्षण दिखाई दे सकते हैं।

मक्का में संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन उच्च एवं गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के लिए अत्यंत आवश्यक है। खेत में पौधों की पत्तियों, वृद्धि एवं रंग में दिखाई देने वाले विशिष्ट परिवर्तनों से पोषक तत्वों की कमी का प्रारंभिक संकेत प्राप्त किया जा सकता है। हालांकि, केवल –श्य लक्षणों के आधार पर कमी की पुष्टि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि पोषक तत्वों की कमी के कई लक्षण रोग, कीट अथवा पर्यावरणीय तनाव से मिलते-जुलते हो सकते हैं। अतः मृदा परीक्षण, पौध ऊतक परीक्षण तथा खेत में दिखाई देने वाले लक्षणों के समन्वित आधार पर पोषक तत्वों की कमी की पहचान करनी चाहिए। कमी की पुष्टि होने पर संबंधित

पोषक तत्व वाले उर्वरक का उचित मात्रा एवं सही समय पर प्रयोग किया जाना चाहिए। इससे पौधों की वृद्धि एवं विकास में सुधार के साथ मक्का की उत्पादकता बढ़ाने में सहायता मिल सकती है।

रबी मक्का में एडिटिव अंतरफसली खेती: बिहार के लिए जलवायु-स्मार्ट विविधीकरण की एक प्रभावी रणनीति

¹स्वराज कुमार दत्ता, ²संजय कुमार, ³धर्मेन्द्र कुमार वर्मा, ⁴बीरेन्द्र कुमार, ⁵सीमा कुमारी, ⁶श्वेता कुमारी, ⁷सुशांत,

एवं ⁸सौरभ कुमार चौधरी

² एवं ⁴ विश्वविद्यालय प्राध्यापक—सह—मुख्य वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

^{1, 3} एवं ⁷ संबद्ध प्राध्यापक—सह—वरीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

^{5, 6} एवं ⁸ सहायक प्राध्यापक—सह—कनीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

प्रस्तावना

बिहार में मक्का एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक खाद्यान्न फसल के रूप में स्थापित हो चुका है। विशेष रूप से रबी मक्का की उच्च उत्पादकता, सिंचाई की उपलब्धता तथा अनुकूल शीतकालीन जलवायु के कारण राज्य की कृषि अर्थव्यवस्था में इसकी भूमिका लगातार बढ़ रही है। वर्ष 2024–25 में बिहार में लगभग 6.60 मिलियन टन मक्का उत्पादन तथा औसत उत्पादकता लगभग 6.91 टन प्रति हेक्टेयर दर्ज की गई। राज्य की फसल सघनता लगभग 152 प्रतिशत तक पहुँच चुकी है, इसलिए सीमित कृषि भूमि से अधिक उत्पादन और आय प्राप्त करने वाली तकनीकों की आवश्यकता और भी महत्वपूर्ण हो गई है। रबी मक्का की प्रारंभिक वृद्धि अवस्था में पंक्तियों के बीच पर्याप्त खाली स्थान उपलब्ध रहता है। यदि मक्का की पौध संख्या को बनाए रखते हुए इस स्थान में कम अवधि की दलहनी या सब्जी फसल को अतिरिक्त रूप से शामिल किया जाए, तो इसे एडिटिव अंतरफसली खेती (Additive Intercropping) कहा जा सकता है।

इस तकनीक का मूल उद्देश्य है—

मक्का की उत्पादकता को बनाए रखते हुए उसी खेत, उसी मौसम और उसी भूमि से एक अतिरिक्त आर्थिक उपज एवं आय प्राप्त करना।

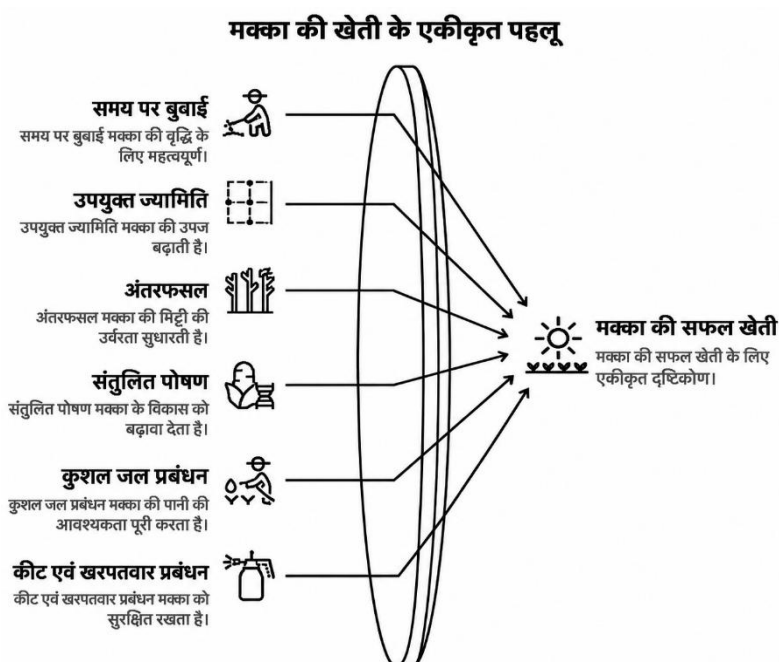
बिहार में एडिटिव अंतरफसली खेती की संभावनाएँ :

बिहार में रबी मक्का की बुवाई सामान्यतः अक्टूबर—नवंबर के दौरान की जाती है। मक्का की शुरुआती वृद्धि अपेक्षाकृत धीमी होने के कारण पंक्तियों के बीच उपलब्ध सूर्य का प्रकाश, भूमि, नमी एवं पोषक तत्वों का पूरा उपयोग नहीं हो पाता। इस खाली स्थान में ऐसी कम अवधि की फसलें लगाई जा सकती हैं जिनकी आर्थिक उपज लगभग 60–90 दिनों में प्राप्त हो जाए। इससे अंतरफसल की अधिकांश उपज मक्का की अधिक पोषक तत्व एवं संसाधन माँग वाली अवस्था से पहले प्राप्त की जा सकती है।

उपयुक्त अंतरफसल का चयन :

अंतरफसली प्रणाली की सफलता काफी हद तक सही फसल के चयन पर निर्भर करती है। परियोजना के अनुभवों से गार्डन मटर (Garden pea) तथा फ्रेंच बीन (French bean) रबी मक्का के साथ आशाजनक अंतरफसलें पाई गई हैं। इन फसलों की जलवायु संबंधी आवश्यकताएँ रबी मक्का की शुरुआती वृद्धि

अवधि से अच्छी तरह मेल खाती हैं। हालाँकि, एडिटिव अंतरफसली खेती को केवल दलहनी फसलों तक सीमित रखने की आवश्यकता नहीं है। बाजार, सिंचाई, पोषण एवं स्थानीय जलवायु के आधार पर धनिया, पालक, पत्तागोभी तथा फूलगोभी जैसी सब्जियों को भी शामिल किया जा सकता है।



चित्र 1. : रबी मक्का में एडिटिव अंतरफसली खेती की अवधारणा

तालिका 1. : रबी मक्का के लिए संभावित एडिटिव अंतरफसलें

अंतरफसल वर्ग और उनकी विशेषताएं

अंतरफसल वर्ग	उदाहरण फसलें	मुख्य लाभ	मक्का में भूमिका
 दलहा अंतरफसल	गार्डन मटर, फ्रेंच बीन	अतिरिक्त आय एवं जैविक N स्थिरीकरण	उचित पंक्ति व्यवस्था
 सब्जीय अंतरफसल	धनिया, पालक	शीघ्र उपज एवं प्रारंभिक नकद आय	सही बुवाई समय
 भारी पोषक आवश्यकता वाली अंतरफसल	पत्तागोभी, फूलगोभी	अधिक मूल्य वाली उपज	अतिरिक्त पोषण आवश्यक
 अन्य अंतरफसल (विशिष्ट)	शलगम विशेष की फसलें	उत्पादन एवं बाजार विविधीकरण	अवधि एवं मक्का के साथ अनुकूलता

पत्तेदार सब्जियों के लिए बुवाई का समय महत्वपूर्ण

पत्तेदार सब्जियों को मक्का में शामिल करते समय उचित समय-खिड़की (time window) पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। धनिया और पालक जैसी फसलों का अंकुरण एवं प्रारंभिक स्थापना तापमान तथा मिट्टी की नमी के प्रति अपेक्षाकृत संवेदनशील होती है। देर से बुवाई होने पर इनकी अंकुरण क्षमता और आर्थिक उपज प्रभावित हो सकती है। इसके विपरीत, मटर और फ्रेंच बीन रबी मौसम की जलवायु के प्रति अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल एवं सहनशील पाए गए हैं। इसलिए पूरे बिहार के लिए एक ही अंतरफसल की अनुशंसा करने के बजाय क्षेत्र, मौसम और बाजार के अनुसार फसल का चयन अधिक उपयुक्त होगा।

मक्का की उपज बनाए रखते हुए प्रणाली उत्पादकता में वृद्धि

एडिटिव अंतरफसली खेती के संबंध में एक प्रमुख प्रश्न यह है कि क्या अतिरिक्त फसल मक्का की उपज को कम करेगी ?

इस प्रणाली की विशेषता यह है कि इसमें सामान्यतः मक्का की वांछित पौध संख्या को बनाए रखा जाता है तथा उचित पंक्ति ज्यामिति के माध्यम से अतिरिक्त फसल को समायोजित किया जाता है।

परियोजना के परिणाम इस दिशा में उत्साहजनक रहे। एकल मक्का में मक्का समतुल्य उपज (Maize Equivalent Yield; MEY) लगभग 9.0 टन/हेक्टेयर रही, जबकि गार्डन मटर और फ्रेंच बीन के साथ विभिन्न एडिटिव अंतरफसली प्रणालियों में यह लगभग 11.3–12.1 टन/हेक्टेयर रही।

तालिका 2. एडिटिव अंतरफसली खेती में प्रणाली उत्पादकता

उपचार	मक्का समतुल्य उपज (टन/हे.)	अभिमत
एकल मक्का	~9.0	आधार
मक्का-गार्डन मटर, एकल पंक्ति	~11.3	अधिक
मक्का-फ्रेंच बीन, एकल पंक्ति	~11.6	अधिक
मक्का-फ्रेंच बीन, युग्म पंक्ति	~12.1	सर्वोत्तम समूह
मक्का-गार्डन मटर, युग्म पंक्ति	~12.1	सर्वोत्तम समूह

सर्वोत्तम अंतरफसली प्रणाली में मक्का समतुल्य उपज लगभग 34 प्रतिशत अधिक रही। इसका अर्थ यह नहीं है कि अंतरफसल स्वयं मक्का की दाना उपज बढ़ा रही है। इसका वास्तविक लाभ है—

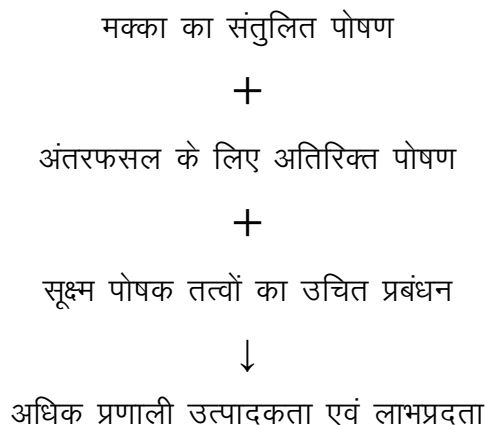
मक्का की उत्पादकता बनाए रखें + अतिरिक्त अंतरफसल प्राप्त करें = कुल प्रणाली उत्पादकता में वृद्धि।

पोषक तत्व प्रबंधन: सफलता की महत्वपूर्ण कड़ी

मक्का के बीच एक अतिरिक्त आर्थिक फसल उगाने से स्वाभाविक रूप से पोषक तत्वों की माँग बढ़ जाती है। इसलिए अंतरफसल से केवल मक्का को दिए गए पोषक तत्वों के आधार पर अच्छी आर्थिक उपज की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

परियोजना के अनुभवों में अंतरफसल को उसकी अनुशंसित NPK मात्रा का लगभग 60 प्रतिशत अतिरिक्त पोषण देने पर कम पोषण स्तर की तुलना में बेहतर आर्थिक उपज एवं प्रतिफल प्राप्त हुआ। विशेष रूप से पत्तागोभी और फूलगोभी जैसी अधिक पोषक तत्व माँग वाली फसलों के लिए पर्याप्त अतिरिक्त पोषण अत्यंत आवश्यक है।

इसे सरल रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है—



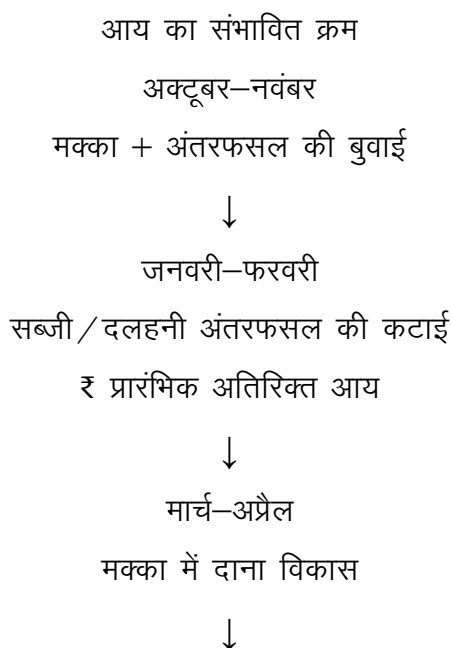
दलहनी अंतर फसलें जैविक नत्रजन स्थिरीकरण के माध्यम से अतिरिक्त लाभ प्रदान कर सकती हैं तथा दीर्घकाल में मिट्टी की उर्वरता एवं पोषक तत्व चक्रण में योगदान दे सकती हैं।

छोटे किसानों के लिए अतिरिक्त आय का अवसर

बिहार के छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए इस तकनीक का सबसे महत्वपूर्ण लाभ है—

बिना अतिरिक्त भूमि के अतिरिक्त आय

एकल मक्का में किसान को मुख्य आर्थिक आय के लिए मक्का की कटाई तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इसके विपरीत, अल्पावधि अंतरफसल से लगभग 60–90 दिनों में बाजार योग्य उपज प्राप्त की जा सकती है।



अप्रैल-मई
मक्का की कटाई
र मुख्य आय

अंतरफसल से मिलने वाली प्रारंभिक आय किसान को सिंचाई, उर्वरक, मजदूरी तथा घरेलू आवश्यकताओं के लिए नकदी उपलब्ध करा सकती है।

इसलिए सब्जी बाजारों के निकट स्थित छोटे किसानों के लिए यह प्रणाली विशेष रूप से लाभकारी हो सकती है।

जलवायु जोखिम के विरुद्ध जैविक एवं आर्थिक बीमा

बिहार में जलवायु परिवर्तन एवं मौसम की बढ़ती अनिश्चितता कृषि के लिए महत्वपूर्ण चुनौती बनती जा रही है। रबी मक्का की परिपक्वता एवं कटाई सामान्यतः अप्रैल-मई तक पहुँचती है। इसी अवधि में कई बार तेज आँधी, असामयिक वर्षा, ओलावृष्टि तथा प्री-मानसून वर्षा जैसी घटनाएँ मक्का की खड़ी फसल, कटाई तथा दाना सुखाने को प्रभावित कर सकती हैं।

एकल मक्का प्रणाली में किसान की अधिकांश मौसमी आय एक ही फसल और एक ही कटाई अवधि पर निर्भर रहती है।

एडिटिव अंतरफसल इस जोखिम को समय के अनुसार विभाजित करती है।



इस प्रकार-

पहले अंतरफसल से आय+बाद में मक्का से आय = आय का विविधीकरण+कम आर्थिक जोखिम

इस अर्थ में एडिटिव अंतरफसली खेती “जैविक एवं आर्थिक जलवायु बीमा” (Biological and Economic Climate Insurance) की तरह कार्य कर सकती है। यह मौसम की प्रतिकूल घटना को रोक नहीं सकती, लेकिन किसान की पूरी आय को केवल एक फसल और एक कटाई अवधि पर निर्भर रहने से बचाती है।

उपज से आगे: पर्यावरणीय लाभ

विशेषकर दलहनी फसलों को मक्का में शामिल करने से कई पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ प्राप्त हो सकती हैं।

तालिका 3. मक्का आधारित एडिटिव अंतरफसल प्रणाली के संभावित पर्यावरणीय लाभ

लाभ	प्रमुख प्रक्रिया	संभावित प्रभाव
उर्वरक N पर कम निर्भरता	दलहनों द्वारा जैविक N स्थिरीकरण	बाहरी नत्रजन आवश्यकता में कमी
कम कार्बन फुटप्रिंट	उर्वरक एवं ऊर्जा आवश्यकता में संभावित कमी	जलवायु शमन
मृदा संरक्षण	अधिक भूमि आवरण	मृदा क्षरण में कमी
नमी संरक्षण	खुली मिट्टी की सतह कम	वाष्पीकरण में कमी
खरपतवार दमन	अंतरफसल द्वारा शीघ्र भूमि आवरण	खरपतवार प्रतिस्पर्धा कम
कीट प्रबंधन	फसल विविधता	कुछ कीटों के प्रसार में कमी
जैव विविधता	विविध जड़ एवं कैनोपी संरचना	पारिस्थितिक कार्यों में सुधार
पोषण सुरक्षा	दलहन एवं सब्जियों का उत्पादन	प्रोटीन व सूक्ष्म पोषक तत्व
आय विविधीकरण	एक से अधिक बाजार योग्य उत्पाद	आजीविका में स्थिरता

अतः एडिटिव अंतरफसली खेती को केवल “मक्का की पंक्तियों के बीच एक और फसल उगाने” की तकनीक के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यह रबी मक्का के पारिस्थितिक एवं आर्थिक सघनीकरण (Ecological and Economic Intensification) का एक माध्यम है।

बिहार के लिए गुड एग्रीकल्चरल प्रैक्टिस (GAP)

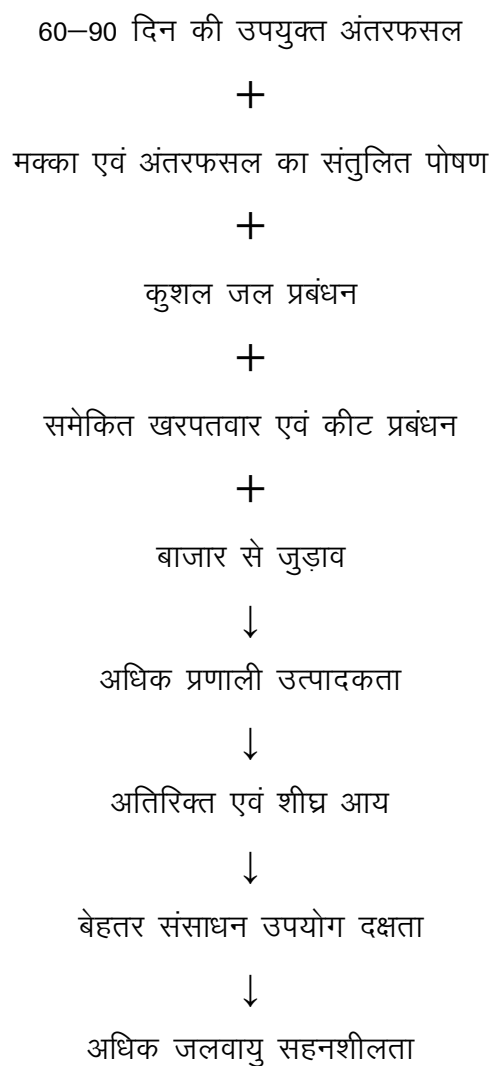
इस तकनीक की सफलता केवल अंतरफसल चुनने पर निर्भर नहीं है। इसके लिए एक समन्वित प्रबंधन पैकेज आवश्यक है।

समय पर मक्का की बुवाई

+

उपयुक्त चौड़ी/युग्म-पंक्ति मक्का ज्यामिति

+



चित्र 3. रबी मक्का एडिटिव अंतरफसल का GAP मॉडल

बिहार के लिए फसल विकल्पों का विविधीकरण

एक ही मक्का-अंतरफसल संयोजन को पूरे बिहार में लागू करने के बजाय किसानों को उनकी परिस्थितियों के अनुसार विकल्पों की टोकरी (Basket of Options) उपलब्ध कराना अधिक व्यावहारिक होगा।

तालिका 4. किसान के उद्देश्य के अनुसार संभावित अंतरफसल

किसान का प्रमुख उद्देश्य	उपयुक्त अंतरफसल वर्ग	उदाहरण
आय + मृदा उर्वरता	दलहनी फसल	गार्डन मटर, फ्रेंच बीन
बहुत जल्दी नकद आय	पत्तेदार सब्जियाँ	धनिया, पालक
अधिक मूल्य वाली उपज	अधिक पोषक तत्व माँग वाली सब्जियाँ	पत्तागोभी, फूलगोभी
कम उत्पादन जोखिम	अनुकूल अल्पावधि फसलें	मटर, फ्रेंच बीन
पोषण विविधीकरण	दलहन + सब्जियाँ	मटर, बीन, पत्तेदार सब्जियाँ

बाजार आधारित उत्पादन	स्थानीय मांग वाली सब्जियाँ	स्थान विशेष के अनुसार
----------------------	----------------------------	-----------------------

सब्जी बाजार के नजदीक किसानों के लिए उच्च मूल्य वाली सब्जियाँ अधिक लाभकारी हो सकती हैं, जबकि कमजोर बाजार संपर्क वाले क्षेत्रों में अपेक्षाकृत आसानी से विपणन योग्य दलहनी फसलों को प्राथमिकता दी जा सकती है।

बिहार में तकनीक के विस्तार की दिशा

बिहार की सभी कृषि परिस्थितियाँ समान नहीं हैं। राज्य के विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों में मिट्टी, तापमान, सिंचाई, फसल प्रणाली तथा बाजार की उपलब्धता अलग-अलग है। इसलिए तकनीक के विस्तार से पहले स्थान-विशिष्ट सत्यापन (location&specific validation) आवश्यक होगा।

आगे के अनुसंधान एवं ऑन-फार्म परीक्षणों में केवल मक्का की उपज के बजाय निम्न संकेतकों को भी शामिल करना चाहिए:

- मक्का एवं अंतरफसल की आर्थिक उपज,
- मक्का समतुल्य उपज (MEY),
- भूमि समतुल्य अनुपात (LER),
- शुद्ध आय एवं लाभ : लागत अनुपात,
- वृद्धिशील लाभ : लागत अनुपात (ICBR),
- अतिरिक्त रोजगार,
- जल उत्पादकता,
- पोषक तत्व उपयोग दक्षता,
- ऊर्जा उपयोग दक्षता,
- ग्रीनहाउस गैस/कार्बन फुटप्रिंट,
- उपज एवं आय की स्थिरता, तथा
- किसान की पसंद एवं तकनीक अपनाने की संभावना।

साथ ही कृषक उत्पादक संगठन (FPO), कृषि विज्ञान केन्द्र, विश्वविद्यालय, विस्तार एजेंसियाँ, सब्जी व्यापारी तथा अन्य मूल्य-श्रृंखला भागीदारों को जोड़ना आवश्यक होगा।

निष्कर्ष

एडिटिव अंतरफसली खेती बिहार के उच्च उत्पादक रबी मक्का को अधिक विविधीकृत, लाभकारी और जलवायु-सहिष्णु उत्पादन प्रणाली में परिवर्तित करने की क्षमता रखती है। इस प्रणाली में मक्का की प्रारंभिक वृद्धि अवस्था में उपलब्ध अंतर-पंक्ति स्थान का उपयोग करके एक अल्पावधि फसल से अतिरिक्त आर्थिक उपज प्राप्त की जाती है। परियोजना अनुभवों में एकल मक्का की लगभग 9.0 टन/हेक्टेयर मक्का समतुल्य उपज की तुलना में गार्डन मटर एवं फ्रेंच बीन की आशाजनक युग्म-पंक्ति प्रणालियों में

लगभग 12.1 टन/हेक्टेयर तक उत्पादकता प्राप्त हुई, अर्थात् कुल प्रणाली उत्पादकता में लगभग 34 प्रतिशत वृद्धि।

अंतरफसल का पोषण भी महत्वपूर्ण है। परीक्षण की गई प्रणाली में अंतरफसल के लिए अनुशंसित NPK की लगभग 60 प्रतिशत मात्रा देने पर कम पोषण स्तर की तुलना में बेहतर आर्थिक उपज एवं प्रतिफल प्राप्त हुआ।

पत्तेदार सब्जियों के लिए सही बुवाई समय अत्यंत महत्वपूर्ण है, जबकि मटर एवं फ्रेंच बीन जैसी दलहनी फसलें अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल विकल्प हैं। पत्तागोभी एवं फूलगोभी जैसी अधिक पोषक तत्व माँग वाली फसलों को भी पर्याप्त पोषण एवं बाजार उपलब्धता की स्थिति में शामिल किया जा सकता है।

बिहार के छोटे किसानों के लिए इस तकनीक का सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि 60–90 दिनों में अंतरफसल से आय प्राप्त हो सकती है, जबकि मुख्य मक्का की आय बाद में प्राप्त होती है। इससे किसान की पूरी मौसमी आय केवल अप्रैल–मई में मक्का की कटाई पर निर्भर नहीं रहती और प्रतिकूल मौसम से होने वाले आर्थिक जोखिम को कम करने में सहायता मिल सकती है।

प्रमुख संदेश

“वही भूमि – मक्का के साथ एक अतिरिक्त फसल – शीघ्र अतिरिक्त आय – अधिक प्रणाली उत्पादकता – कम जलवायु जोखिम।”

इस प्रकार, बिहार में रबी मक्का आधारित एडिटिव अंतरफसली खेती को केवल एक अंतरफसल तकनीक के रूप में नहीं, बल्कि सतत कृषि सघनीकरण, छोटे किसानों की आय विविधीकरण तथा जलवायु जोखिम प्रबंधन की रणनीति के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है।

परिवर्तनशील जलवायु परिस्थितियों में दलहनी फसलों की उत्पादन क्षमता एवं संभावनाएँ

¹सुबोर्ना रॉय चौधरी, ²अनुपम दास, ¹शिवशंकर आचाय, ¹सीमा, ³चंदन कुमार पांडा, ¹प्रवेश कुमार

एवं ¹अर्नब राय चौधरी

¹सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

²मृदा विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

³प्रसार शिक्षा विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

परिचय

दलहनी फसलें फलियाँ उत्पन्न करने वाले पौधों के सूखे एवं खाद्य बीज हैं, जिन्हें अंग्रेजी में Pulses कहा जाता है। Pulses शब्द लैटिन भाषा के चनसेया pulvis शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ गाढ़ी खिचड़ी या सूप के समान खाद्य पदार्थ से संबंधित है। पोषणीय —ष्टि से दलहनी फसलें प्रोटीन, आहार रेशा (फाइबर), विटामिन तथा खनिज तत्वों का एक उत्कृष्ट स्रोत हैं। इसी कारण ये विश्वभर में संतुलित एवं स्वस्थ आहार का अनिवार्य घटक मानी जाती हैं। भारत दलहनी फसलों का विश्व में सर्वाधिक उत्पादक एवं आयातक देश है, तथापि घरेलू बाजार में इनकी उपलब्धता अक्सर अनिश्चित एवं अपर्याप्त बनी रहती है। देश की कुल प्रोटीन आवश्यकता का 15 प्रतिशत से भी कम भाग दलहनों द्वारा पूरा होता है, जबकि देश की व्यापक शाकाहारी आबादी के लिए यह सर्वाधिक किफायती एवं सहज उपलब्ध प्रोटीन स्रोत हैं। लगभग एक दशक पूर्व विशेषज्ञों के एक समूह द्वारा दलहनी फसलों को सर्वाधिक समृद्ध एवं किफायती प्रोटीन स्रोत के रूप में चिन्हित किया गया था, क्योंकि इनमें 18–25 प्रतिशत तक प्रोटीन पाया जाता है, जो अंडा, दूध एवं पोल्ट्री उत्पादों की तुलना में कम लागत पर उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त कम वसा तथा उच्च घुलनशील फाइबर की मौजूदगी के कारण दलहन को मधुमेह, हृदय रोग एवं मोटापा जैसी स्थितियों के प्रबंधन हेतु उपयोगी माना जाता है, क्योंकि यह रक्त में कोलेस्ट्रॉल एवं शर्करा स्तर को नियंत्रित करने में सहायक होता है।

कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था की —ष्टि से भी दलहनी फसलों का महत्व अत्यंत विशिष्ट है। ये वायुमंडलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण द्वारा मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि करती हैं, जल की अपेक्षाकृत कम आवश्यकता रखती हैं और वर्षा आधारित एवं सीमांत कृषि-परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। दलहन उत्पादन बहुउद्देशीय होता है—अनाज एवं बीज के प्रत्यक्ष उपभोग से लेकर चारे के रूप में उपयोग तक—जिससे न केवल पारिवारिक खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित होती है, बल्कि किसानों को बेहतर बाजार लाभ एवं आय स्थिरता भी प्राप्त होती है। इसके बावजूद भारत में दलहनी फसलों को ऐतिहासिक रूप से “अनाथ फसलें” (orphan crops) माना गया है, क्योंकि इन्हें सामान्यतः कम निवेश या प्रतिकूल परिस्थितियों में उगाया जाता रहा। यद्यपि, वर्तमान में इन फसलों का कृषि वैज्ञानिक योगदान, पोषणात्मक

महत्ता तथा प्रतिकूल जलवायु एवं संसाधन सीमितता की स्थितियों में टिकाऊ उत्पादन क्षमता इन्हें बदलते जलवायु परि-श्य में और अधिक प्रासंगिक एवं आवश्यक बना रही है।

जल-आवश्यकता, जलवायु-लचीलापन एवं पर्यावरणीय लाभ

अन्य प्रमुख फसलों की तुलना में दलहनी फसलों की जल-आवश्यकता सर्वाधिक कम होती है। जहाँ अधिक जल-आवश्यकता वाली फसलें जैसे गन्ना, केला और धान अपने विकास काल में सामान्यतः 1,100 से 2,200 मिमी तक जल की मांग करती हैं, वहीं दलहनी फसलों की कुल आवश्यकता प्रायः केवल 200 से 450 मिमी. के बीच रहती है। इस कारण दलहनी फसलें जल-अभावी क्षेत्रों, वर्षा-आधारित कृषि प्रणालियों तथा सीमित सिंचाई सुविधाओं वाले क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त विकल्प हैं, जिससे किसानों को टिकाऊ एवं भरोसेमंद फसल चयन का अवसर मिलता है।

चयनित फसलों की कुल जल-आवश्यकता फसल	कुल जल-आवश्यकता (मिमी)
गन्ना	1800&2200
केला	1200&2200
धान	1100&1250
कपास	600&700
गेहूँ	500&700
टालू	500&700
मक्का	500&600
तंबाकू	450&600
दलहनी फसलें	200&450

चयनित फसलों की कुल जल-आवश्यकता

स्वाभाविक रूप से लचीला (resilient) स्वभाव होने के कारण दलहनी फसलें फसल-क्रम (crop sequences) में शामिल करने हेतु किसानों के लिए सर्वाधिक सुरक्षित विकल्पों में से एक हैं। ये जलवायु परिवर्तनशीलता को अन्य अनेक फसलों की तुलना में बेहतर सहन कर लेती हैं, जिससे छोटे एवं सीमांत किसानों का जोखिम कम होता है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ वर्षा पर निर्भरता अधिक है। दलहनी फसलें बहुउपयोगी होती हैं और भोजन, चारा, ईंधन तथा हरित खाद के रूप में उपयोगी हैं, जिससे आजीविका में विविधता आती है। यह बहु-उपयोगिता ग्रामीण कृषि श्रम में महत्वपूर्ण योगदान देने वाली महिलाओं के संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

वैज्ञानिक प्रमाण भी दलहनी फसलों के जलवायु-लचीलेपन का समर्थन करते हैं। उदाहरणार्थ, Ding et al- (2018) ने रिपोर्ट किया कि चना एवं मसूर कम नमी की स्थिति में भी अपेक्षाकृत स्थिर उपज बनाए रखते हैं, जबकि अन्य कई फसलें समान सूखे की परिस्थितियों में प्रभावित हो जाती हैं। इस कारण दलहन

अर्ध-शुष्क एवं शुष्क क्षेत्रों में जलवायु-स्मार्ट कृषि (climate & smart agriculture) के महत्वपूर्ण घटक माने जाते हैं, जहाँ वर्षा अनिश्चितता जलवायु परिवर्तन के कारण लगातार बढ़ रही है।

कृषिगत एवं आजीविकीय लाभ से परे, दलहन एक टिकाऊ आहार-प्रोटीन स्रोत भी हैं, जिनका पर्यावरणीय पदचिह्न (environmental footprint) अत्यंत कम है। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि 1 किलोग्राम गोमांस, सूअर-मांस एवं मुर्गे मांस का उत्पादन करने में क्रमशः 43, 18 एवं 11 गुना अधिक जल की आवश्यकता होती है, जबकि समान मात्रा में दलहनी उत्पादन हेतु न्यूनतम जल की आवश्यकता होती है। इस कारण दलहनी फसलें पशु-आधारित प्रोटीन स्रोतों की तुलना में अधिक जल-क्षमता वाली, संसाधन-कुशल तथा जलवायु-अनुकूल विकल्प प्रदान करती हैं। जैसे-जैसे वैश्विक खाद्य-प्रणालियाँ स्थिरता एवं ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में कमी की दिशा में आगे बढ़ रही हैं, दलहन उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों के लिए एक पर्यावरणीय रूप से उत्तरदायी विकल्प प्रस्तुत करती हैं।

स्थायी कृषि में दलहनी फसलों की भूमिका

दलहनी फसलें अपनी न्यूनतम इनपुट आवश्यकता, पर्यावरणीय लाभों एवं मृदा स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव के कारण स्थायी कृषि में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये फसल चक्र (crop rotation) की प्रमुख घटक हैं और अनाज फसलों की तुलना में कम उर्वरकों की आवश्यकता रखती हैं, जिससे किसानों के लिए किफायती विकल्प एवं उपभोक्ताओं के लिए कम कार्बन प्रोटीन स्रोत उपलब्ध होता है। दलहनी फसलों की सघन पर्ण छत्रीय वृद्धि (dense canopy) एवं पत्तीय जैव-भार मृदा अपरदन को कम करने में सहायक होते हैं, जबकि पौध अवशेषों का मृदा में समावेशन मृदा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाता है। फसल चक्र, मिश्रित खेती एवं अंतर्वर्ती फसल प्रणालियों में दलहनी फसलों के समावेश से दीर्घकाल में जैव-विविधता, मृदा स्वास्थ्य तथा खेती प्रणालियों की सहनशीलता (resilience) में उल्लेखनीय सुधार होता है।

दलहनी फसलों का एक प्रमुख स्थिरतात्मक गुण वायुमंडलीय नाइट्रोजन (NO_2) का सहजीवी जीवाणुओं (rhizobial bacteria) के माध्यम से स्थिरीकरण करने की क्षमता है। ये जीवाणु जड़-ग्रंथियों में सक्रिय रहते हैं। दलहनी फसलों में औसत नाइट्रोजन स्थिरीकरण दर विकास अवधि में लगभग 1.0 किग्रा/हे. /दिवस होती है। प्रजाति, राइजोबियल जीवाणु-वंश, मृदा गुण, कृषि-प्रबंधन एवं जलवायु के आधार पर दलहन द्वारा 30 से 150 किग्रा नाइट्रोजन/हेक्टेयर तक स्थिरीकृत किया जा सकता है। इनमें से लगभग 65–70 प्रतिशत नाइट्रोजन बाद वाली फसल के लिए उपलब्ध हो जाती है, जिससे रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरकों की आवश्यकता में कमी आती है। यह जैविक नाइट्रोजन आपूर्ति धीरे-धीरे मुक्त होती है, जो पौधों की पोषण मांग के अनुरूप होती है और समय के साथ मृदा उर्वरता में प्राकृतिक सुधार करती है।

दलहनी फसल	नाइट्रोजन स्थिरीकरण (किग्रा/हे.)
उड़द	50–60
अरहर	68–200
मूंग	50–55
मसूर	35–100
चना	26–63
मटर	46–50
लोबिया	53–85

Source: Gill et al. (2009); Brahmprakash et al. (2004)

मृदा उर्वरता में सुधार के अतिरिक्त, दलहनी फसलें कृषि प्रणालियों के कार्बन उत्सर्जन को कम कर ऊर्जा संचयन में भी योगदान देती हैं। ICRISAT (2016) के अध्ययनों में पाया गया कि अनाज-प्रधान फसल चक्रों में दलहन को शामिल करने पर औसत कार्बन पदचिह्न (carbon footprint) में 24–37 प्रतिशत की कमी आती है। जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के कारण औद्योगिक नाइट्रोजन उर्वरकों जो अत्यधिक ऊर्जा-गहन होते हैं, की आवश्यकता कम हो जाती है, जिससे कृषि प्रणालियों में अपुनस्थापनीय (non-renewable) ऊर्जा उपयोग में 22–24 प्रतिशत की कमी आती है। Gan et al- (2011) के अनुसंधान से ज्ञात हुआ कि दलहन के बाद बोए गए ड्यूरम गेहूँ में कार्बन पदचिह्न 17 प्रतिशत कम था, जबकि दलहन-गेहूँ क्रम में गेहूँ का कार्बन पदचिह्न पारंपरिक अनाज गेहूँ क्रम की तुलना में 34 प्रतिशत तक घटा। इसके अतिरिक्त, दलहन फसलें मृदा में पर्याप्त मात्रा में जैविक पदार्थ जोड़कर मृदा संरचना में सुधार, कार्बन पृथक्करण (carbon sequestration) में वृद्धि तथा दीर्घकालिक उत्पादकता एवं मृदा स्वास्थ्य को प्रोत्साहित करती हैं।

दलहन एवं ग्रीनहाउस गैस शमन

दलहनी फसलें ग्रीनहाउस गैस (GHG) उत्सर्जन को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। अन्य अनेक फसलों की तुलना में दलहनी फसलों द्वारा प्रति इकाई क्षेत्र 5–7 गुना कम GHG उत्सर्जित होता है। एक तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात हुआ कि जहाँ 1 किलोग्राम दलहनों के उत्पादन से लगभग 0.5 किलोग्राम CO₂ समतुल्य उत्सर्जन होता है, वहीं 1 किलोग्राम गोमांस के उत्पादन से लगभग 9.5 किलोग्राम CO₂ समतुल्य उत्सर्जन होता है। यह स्पष्ट अंतर विशेष रूप से उन परिस्थितियों में महत्वपूर्ण है जब वैश्विक खाद्य प्रणालियाँ अपने कार्बन पदचिह्न (carbon footprint) के संदर्भ में गंभीर समीक्षा के दौर से गुजर

रही हैं। इस प्रकार पौध-आधारित प्रोटीन स्रोतों, विशेषकर दलहन, की ओर संक्रमण पर्यावरणीय —ष्टि से लाभकारी सिद्ध होता है।

न्यून वैश्विक ऊष्मन क्षमता एवं जल-दक्षता

दलहनी फसलों की वैश्विक ऊष्मन क्षमता (Global Warming Potential, GWP) अत्यंत कम होती है और उनमें सूखा-सहनशीलता (drought tolerance) भी उच्चस्तरीय पाई जाती है। आर्द्रता तनाव सहने की इनकी क्षमता के कारण इन्हें अपेक्षाकृत कम जल की आवश्यकता होती है, जिसके परिणामस्वरूप खेती में ऊर्जा खपत भी कम हो जाती है। ICRISAT (2016) के अनुसंधान के अनुसार, फसल-चक्र में दलहनी फसलों को शामिल करने से संपूर्ण cropping system की जल-उपयोग दक्षता (water use efficiency) में वृद्धि होती है। यह दलहन को जल-अभावी कृषि-परिस्थितियों में विशेष रूप से मूल्यवान बनाता है।

मृदा उर्वरता एवं कार्बन पृथक्करण में योगदान

जलवायु संबंधी लाभों के अतिरिक्त, दलहनी फसलें मृदा स्वास्थ्य एवं मृदा उर्वरता में भी उल्लेखनीय सुधार करती हैं। दलहन मृदा में मृदा कार्बनिक कार्बन (SOC), ह्यूमस तथा नाइट्रोजन एवं फास्फोरस जैसे आवश्यक पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाते हैं। दलहनी फसलें कार्बन एवं नाइट्रोजन से समृद्ध पर्याप्त जैव-भार उत्पन्न करती हैं, और जब इनके अवशेषों को हरित खाद (green manure) के रूप में मृदा में मिलाया जाता है या उन्हें स्वाभाविक रूप से विघटित होने दिया जाता है, तब वे मृदा में कार्बनिक पदार्थ संचय को बढ़ावा देती हैं।

दलहनी अवशेषों का अनुपात कम होने के कारण उनका विघटन दर अधिक होता है, जिससे मृदा कार्बन पृथक्करण में वृद्धि होती है। दीर्घावधि में यह प्रक्रिया मृदा संरचना, पोषक तत्व उपलब्धता एवं संपूर्ण मृदा स्वास्थ्य में निरंतर सुधार को बढ़ावा देती है, जिसके परिणामस्वरूप कृषि प्रणालियाँ अधिक सु-ढ़ एवं उत्पादक बनती हैं।

लेग्यूम प्रभाव एवं मृदा जैविक सक्रियता

दलहनी फसलें दो प्रमुख पूर्व-फसल लाभ प्रदान करती हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से Legume Effect कहा जाता है:

नेत्रजन प्रभाव (Nitrogen Effect): दलहन जैविक नेत्रजन स्थिरीकरण द्वारा मृदा में नेत्रजन की मात्रा बढ़ाते हैं।

ब्रेक-क्रॉप प्रभाव : दलहन मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ाते हैं, मृदा संरचना सुधारते हैं, फॉस्फोरस की गतिशीलता बढ़ाते हैं, मृदा की जल-धारण क्षमता सुधारते हैं तथा आगामी फसलों में खरपतवार, कीट एवं रोग दबाव को कम करते हैं। इन लाभों के परिणामस्वरूप फसल क्रम में शामिल अगली फसलों की उपज एवं प्रदर्शन सुधरता है तथा कृषि-प्रणालियों की दीर्घकालिक स्थिरता बढ़ती है। इसके अतिरिक्त दलहनी

फसलों की जड़ें विभिन्न जैव-रासायनिक यौगिक स्रावित करती हैं, जो मृदा सूक्ष्मजीव समुदायों का पोषण करते हैं। फलस्वरूप मृदा जैविक सक्रियता में वृद्धि होती है, जिससे मृदा अधिक “जीवंत” एवं लचीली बनती है और समग्र कृषि-परितंत्र का स्वास्थ्य सुधरता है।

फॉस्फोरस गतिशीलता में भूमिका

फॉस्फोरस पौधों के लिए एक अनिवार्य प्रमुख पोषक तत्व है, किन्तु मृदा में यह प्रायः ऐसे अवशोषण-अक्षम रूपों में विद्यमान रहता है जिन्हें पौधे उपयोग नहीं कर पाते। दलहनी फसलें राइजोस्पीयर में रासायनिक प्रक्रियाओं के माध्यम से इस अवशोषण-अक्षम को गतिशील करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये राइजोस्पीयर को अम्लीकृत करती हैं एवं कार्बोक्सिलेट्स तथा फॉस्फेट्स जैसे एंजाइम/यौगिक स्रावित करती हैं, जिससे मृदा-बंधित फॉस्फोरस मुक्त होकर पौधों हेतु उपलब्ध रूप में परिवर्तित होता है।

दलहनी अवशेष उनकी अनुकूल जैव रासायनिक संरचना एवं निम्न अनुपात के कारण तीव्रता से विघटित होते हैं, जिससे पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण बढ़ता है तथा मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता सुधरती है। अंतर्वर्ती खेती प्रणालियां सामान्यतः एकल-फसली खेती की तुलना में अधिक मृदा कार्बन पृथक्करण प्रदर्शित करती हैं। दुनिया में सर्वाधिक प्रचलित 10 अंतर्वर्ती फसल संयोजनों में से 7 दलहन आधारित हैं, जो मृदा जैव-विविधता एवं सतत कृषि-अभ्यासों को समर्थन प्रदान करते हैं। आवरण फसल अथवा अंतर्वर्ती फसल के रूप में दलहन का उपयोग कृषि-प्रणालियों की समग्र जैव-विविधता एवं मृदा स्वास्थ्य को उन्नत करता है।

चुनौतियों का समाधान एवं दलहन उपलब्धता में सुधार

यद्यपि दलहनी फसलों के पोषणीय एवं पर्यावरणीय लाभ व्यापक रूप से स्थापित हैं, तथापि भारत में उनकी उत्पादन क्षमता एवं उपलब्धता अनेक बाधाओं के कारण अभी भी सीमित है। कई किसान आज भी यह मानते हैं कि दलहन फसलें अनाज एवं तिलहनी फसलों की तुलना में कम आर्थिक प्रतिफल प्रदान करती हैं, और वर्तमान में दलहन उत्पादन का बड़ा हिस्सा सीमांत एवं निम्न-उपजाऊ भूमि पर न्यूनतम इनपुट के साथ होता है। इन चुनौतियों से पार पाने एवं दलहन आपूर्ति में सुधार हेतु आवश्यक है कि किसानों के बीच जागरूकता, प्रशिक्षण एवं वैज्ञानिक प्रबंधन पद्धतियों को बढ़ावा दिया जाए, उच्च उपज देने वाली किस्मों को अपनाया जाए तथा बीज प्रतिस्थापन दर में वृद्धि की जाए। इसके साथ ही उच्च गुणवत्ता वाले प्रमाणित बीजों की समय पर उपलब्धता सुनिश्चित करना अत्यंत आवश्यक है। सिंचाई सुविधाओं का विस्तार भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारत में दलहन क्षेत्र का लगभग 80–85 प्रतिशत हिस्सा आज भी वर्षा-आधारित परिस्थितियों पर निर्भर है। वैज्ञानिक फसल प्रबंधन जैसे समुचित पोषक तत्व प्रबंधन, समय पर बुवाई, तथा कुशल खरपतवार एवं कीट नियंत्रण उपज में उप-इष्टतम (sub-optimal) कमी को रोकने में सहायक है। कटाई उपरांत प्रबंधन में भी सुधार आवश्यक है, विशेषकर भंडारण के

दौरान *Callosobruchus spp.* जैसे कीटों से दानों की सुरक्षा तथा भंडारण नमी स्तर का नियमन, ताकि भंडारण हानियाँ न्यूनतम हों।

जहाँ उत्पादन संबंधी अवरोध मौजूद हैं, वहीं जलवायु शमन एवं संसाधन संरक्षण में दलहन की भूमिका इनके व्यापक विस्तार का ठोस आधार प्रस्तुत करती है। दलहन फसलों से प्रति इकाई क्षेत्र में अन्य कई फसलों की तुलना में पाँच से सात गुना कम ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन होता है। एक तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात हुआ कि 1 किग्रा दलहन उत्पादन से लगभग 0.5 किग्रा CO₂ समतुल्य उत्सर्जन होता है, जबकि 1 किग्रा गोमांस उत्पादन से लगभग 9.5 किग्रा CO₂ समतुल्य उत्सर्जन होता है। दलहन की वैश्विक ऊष्मन क्षमता अत्यंत कम होती है, वे सूखा-सहनशील (drought tolerant) होती हैं और इस प्रकार कम जल एवं ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

जलवायु संबंधी योगदान के अतिरिक्त दलहन फसलें दीर्घकालिक मृदा उर्वरता में भी महत्वपूर्ण सुधार करती हैं। दलहन आधारित फसल-प्रणालियाँ मृदा कार्बनिक कार्बन, ह्यूमस एवं पोषक तत्व उपलब्धता विशेषतः नेत्रजन एवं फॉस्फोरस बढ़ाती हैं। दलहन फसलों की जैव-भार संरचना कार्बन एवं नेत्रजन से समृद्ध होती है, अतः उनके अवशेषों का हरित खाद के रूप में समावेशन अथवा प्राकृतिक विघटन मृदा में कार्बन पृथक्करण को बढ़ावा देता है। उनके निम्न C:N अनुपात के कारण अवशेषों का विघटन तीव्रता से होता है, जिससे मृदा कार्बनिक पदार्थ में वृद्धि, मृदा संरचना में सुधार और अंततः स्थायी कृषि उत्पादकता को समर्थन मिलता है।

निष्कर्ष

यद्यपि दलहन स्थायी कृषि, पोषण सुरक्षा और जलवायु लचीलेपन में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, फिर भी प्रमुख अनाज फसलों की तुलना में इन्हें अपेक्षित ध्यान एवं प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ है और इन्हें लंबे समय तक “अनाथ फसलें” (orphan crops) माना जाता रहा। किंतु उनके विशिष्ट कृषि वैज्ञानिक एवं पर्यावरणीय गुण स्पष्ट रूप से उन्हें भविष्य की जलवायु-स्मार्ट फसलें (climate&smart crops) के रूप में स्थापित करते हैं। दलहन वायुमंडलीय नेत्रजन को स्थिर कर मृदा पोषण में वृद्धि करती हैं और मृदा कार्बनिक पदार्थ में सुधार लाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक नेत्रजन उर्वरकों की आवश्यकता घटती है और मृदा उर्वरता स्वाभाविक रूप से बढ़ती है। वे शाकाहारी आबादी के लिए उच्च गुणवत्ता वाले पौध-आधारित प्रोटीन का किफायती स्रोत हैं और खाद्य, चारा, ईंधन एवं हरित खाद जैसे बहुउद्देशीय उपयोगों में सहायक होती हैं। दलहन का अनाज-आधारित फसल चक्रों में समावेशन जैव-विविधता बढ़ाता है तथा खरपतवार, कीट एवं रोग दबाव को नियंत्रित करने में भी मदद करता है।

इसके अतिरिक्त, दलहन का कार्बन पदचिह्न तथा जल पदचिह्न अनेक पशु-आधारित प्रोटीन स्रोतों की तुलना में कम होता है, जिससे जलवायु परिवर्तन और संसाधन-संकट के संदर्भ में ये अधिक पर्यावरण-अनुकूल विकल्प सिद्ध होती हैं। प्रत्यक्ष उपयोग से परे, दलहन कृषि आधारित कुटीर एवं लघु

उद्यमों को समर्थन देती हैं और इनके अवशेष जुगाली करने वाले पशुओं के लिए पोषक चारे का स्रोत हैं। वर्तमान समय में, जब वैश्विक स्तर पर पशु-आधारित प्रोटीन उपभोग उच्च है, स्वास्थ्य, पोषण एवं स्थिरता के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण दलहन की माँग लगातार बढ़ रही है। अतः अपने बहुआयामी लाभों और रणनीतिक महत्त्व को ध्यान में रखते हुए, दलहन को कृषि नीतियों, शोध प्रयासों और खेती प्रणालियों में अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए, ताकि लचीली, जलवायु-स्मार्ट एवं टिकाऊ खाद्य प्रणालियों का विकास सुनिश्चित किया जा सके।

रबी दलहनी फसलों में खरपतवार प्रबंधन

¹डॉ. बीरेन्द्र कुमार, ²डॉ. अलीशा कुमारी और ³डॉ. सीमा

¹विश्वविद्यालय प्राध्यापक—सह—मुख्य वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान, बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर

²सहायक प्राध्यापक—सह—कनीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान, बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर

³सहायक प्राध्यापक—सह—कनीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान, बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर

परिचय:

रबी दलहन उत्पादन बढ़ाने और किसानों की आय दोगुनी करने में खरपतवार प्रबंधन एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत में शाकाहारी आबादी के लिए दालें प्रमुख प्रोटीन स्रोत हैं। रबी सीजन में उगाई जाने वाली दलहनी फसलें न केवल मानव पोषण के लिए जरूरी हैं, बल्कि भूमि की उर्वरता बनाए रखने में भी सहायक हैं क्योंकि ये फसलें वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करती हैं। हालांकि, इन फसलों की प्रारंभिक धीमी वृद्धि और विशिष्ट संरचना के कारण इन्हें खरपतवारों से कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है, जिससे पैदावार में 30 से 85 प्रतिशत तक की गिरावट हो सकती है।

रबी दलहनी फसलों की प्रारंभिक अवस्था (बुवाई के पहले 30 से 45 दिन) अत्यंत संवेदनशील होती है। इस दौरान फसल के पौधों की विकास दर कम होती है, जिससे खरपतवारों को फैलने और स्थापित होने का अवसर मिलता है। प्रमुख खरपतवार जैसे बथुआ, कृष्णनील, हिरनखुरी, सत्यानाशी, चटरी—मटरी, मोथा, गुल्ली—डंडा आदि दलहनी फसलों के साथ नमी, पोषक तत्व, स्थान और सूर्य के प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। यह न केवल फसल को कमजोर करता है, बल्कि कीड़ों और बीमारियों के लिए आश्रय भी प्रदान करता है, जिससे उपज और गुणवत्ता प्रभावित होती है।

जलवायु परिवर्तन के कारण रबी दलहनी फसलों में खरपतवार की समस्या जटिल होती जा रही है। सर्दियों में तापमान में उतार—चढ़ाव और बेमौसम बरसात की वजह से नई खरपतवार प्रजातियाँ उभर रही हैं। दलहनी फसलों की जड़ें उथली या मध्यम गहरी होती हैं, जिससे ये खरपतवारों द्वारा पोषक तत्वों के शोषण के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाती हैं। साथ ही, रसायनिक शाकनाशियों का उपयोग बेहद सावधानी से करना होता है, क्योंकि गलत या अधिक मात्रा फसल की ग्रंथियों और नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता को नुकसान पहुंचा सकता है।

खरपतवार प्रबंधन की चुनौती से निपटने के लिए केवल रसायनों पर निर्भर रहना न तो वैज्ञानिक —ष्टिकोण है और न ही पर्यावरण के अनुकूल। वर्तमान में एकीकृत खरपतवार प्रबंधन ही सबसे प्रभावी और टिकाऊ समाधान है। इसमें सस्य क्रियाएं (जैसे समय पर बुवाई, उचित बीज दर, कतार की दूरी), यांत्रिक विधियाँ (डोरा, कल्टीवेटर, हाथ से निराई—गुड़ाई), और आवश्यकतानुसार चुनिंदा रासायनिक शाकनाशियों का संतुलित उपयोग किया जाता है।

रबी दलहनी फसलों के प्रमुख खरपतवार

रबी दलहनी फसलों जैसे चना और मसूर में मुख्यतः चौड़ी पत्ती, घास फूस और बहुलवर्षीय खरपतवार हैं। खरपतवारों का प्रकार एवं घनत्व खेत, फसल, मौसम तथा प्रबंधन पद्धति के अनुसार अलग-अलग हो सकता है।

चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार बथुआ, कृष्णनील, हिरनखुरी, सत्यानाशी और चटरी-मटरी इस श्रेणी में आते हैं। बथुआ और कृष्णनील तेजी से फैलकर जमीन की नमी सोख लेते हैं। हिरनखुरी एक लतानुमा खरपतवार है जो पौधों को जकड़ लेती है, जिससे फसल गिर जाती है और कटाई में दिक्कत होती है। घास फूसरू (सकरी पत्ती वाले) गुल्ली-डंडा (गेहूँ का मामा) और जंगली घास इस वर्ग में आते हैं। शुरुआत में ये बिल्कुल मुख्य फसल या गेहूँ के पौधों जैसे दिखते हैं, इसलिए इन्हें पहचानना और निकालना मुश्किल होता है।

बहुलवर्षीय खरपतवार मोथा एक अत्यंत जिद्दी खरपतवार है। इसकी जड़ें जमीन में काफी गहरी (गांठों के रूप में) होती हैं, जिससे इसे पूरी तरह नष्ट करना चुनौतीपूर्ण होता है।

खरपतवार प्रबंधन की प्रमुख तकनीकें

1. समय पर बुवाई करें

दलहनी फसलों की समय पर बुवाई खरपतवार प्रबंधन की पहली सीढ़ी है। उपयुक्त समय पर बुवाई करने से फसल को प्रारंभिक अवस्था में बेहतर बढ़वार मिलती है और वह खरपतवारों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम होती है।

2. स्वच्छ एवं गुणवत्तापूर्ण बीज का प्रयोग

खरपतवारों के बीजों से मुक्त प्रमाणित एवं साफ बीज का प्रयोग करें। दूषित बीज खरपतवारों के खेत में प्रवेश का प्रमुख माध्यम हो सकते हैं।

3. उचित बीज दर एवं कतार दूरी

उचित पौध संख्या बनाए रखने से फसल का छत्र शीघ्र विकसित होता है और खरपतवारों को उपलब्ध प्रकाश एवं स्थान कम मिलता है। चना, मसूर एवं मटर में अनुशंसित कतार दूरी पर बुवाई करने से यांत्रिक निराई-गुड़ाई भी आसानी से की जा सकती है।

4. प्रारंभिक अवस्था में निराई-गुड़ाई

दलहनी फसलों में बुवाई के लगभग 20-40 दिन के दौरान खेत को खरपतवारमुक्त रखना महत्वपूर्ण होता है। आवश्यकता के अनुसार एक या दो बार हाथ से निराई अथवा खुरपी/व्हील हो जैसे उपकरणों का उपयोग किया जा सकता है।

5. प्री-इमर्जेन्स शाकनाशी का प्रयोग

खरपतवारों के अंकुरण से पहले उपयुक्त प्री-इमर्जेन्स शाकनाशी, जैसे पेंडिमेथालिन, ऑक्सीपलुओरफेन का प्रयोग फसल एवं स्थानीय अनुशंसा के अनुसार किया जा सकता है। इसका उपयोग करते समय मिट्टी में पर्याप्त नमी तथा अनुशंसित मात्रा का ध्यान रखना आवश्यक है।

6. पोस्ट-इमर्जेन्स शाकनाशी का विवेकपूर्ण उपयोग

यदि फसल निकलने के बाद खरपतवारों का प्रकोप अधिक हो, तो फसल और खरपतवार की अवस्था के अनुसार अनुशंसित पोस्ट-इमर्जेन्स शाकनाशी का चयन किया जा सकता है। विशेष रूप से चौड़ी पत्ती एवं घास कुल के खरपतवारों के लिए अलग-अलग विकल्प उपलब्ध हैं। शाकनाशी का प्रयोग हमेशा संबंधित फसल के लिए स्वीकृत एवं अनुशंसित मात्रा में ही करें।

7. यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण

कतार में बोई गई चना, मसूर और मटर में व्हील हो, पावर वीडर तथा अन्य हल्के कृषि यंत्रों से निराई-गुड़ाई की जा सकती है। इससे श्रम की आवश्यकता कम होती है तथा मिट्टी में वायु संचार भी बेहतर होता है।

8. मल्विंग एवं फसल अवशेष प्रबंधन

उपलब्ध फसल अवशेषों का उचित उपयोग करके खेत की सतह को ढकने से खरपतवारों के अंकुरण के लिए प्रकाश कम हो सकता है। साथ ही मल्विंग से मिट्टी की नमी का संरक्षण और तापमान नियंत्रण में भी सहायता मिलती है।

9. शाकनाशी प्रतिरोध का प्रबंधन

एक ही शाकनाशी या समान का लगातार प्रयोग करने से खरपतवारों में प्रतिरोध विकसित होने की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए अलग-अलग क्रियाविधि वाले शाकनाशियों का उचित रोटेशन तथा एकीकृत खरपतवार प्रबंधन अपनाना चाहिए।

10. आधुनिक एवं सटीक खरपतवार प्रबंधन

वर्तमान समय में ड्रोन, रिमोट सेंसिंग, और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित तकनीकों का उपयोग खरपतवारों की पहचान और निगरानी में बढ़ रहा है। भविष्य में खेत के केवल खरपतवार प्रभावित हिस्सों में शाकनाशी का छिड़काव करके लागत और रसायनों के उपयोग को कम किया जा सकता है।

11. एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार नियंत्रण के लिए एकीकृत खरपतवार प्रबंधन (IWM) अपनाना सर्वोत्तम विकल्प है। इसमें सांस्कृतिक, यांत्रिक, रासायनिक और जैविक विधियों का संयोजन होता है, जो पर्यावरणीय असंतुलन से बचाते हुए फसल की स्वस्थ वृद्धि सुनिश्चित करता है। साथ ही, एकीकृत पोषण प्रबंधन के साथ मिलकर यह प्रणाली फसल की जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण को बढ़ावा देती है, जिससे कृषि उत्पादन और भूमि की उर्वरता दोनों में सुधार होता है।

रबी दलहनी फसलों में खरपतवार प्रबंधन हेतु शाकनाशी

चना			
शाकनाशी का नाम	मात्रा	प्रयोग का समय	टिप्पणी
पेंडीमेथालिन	1.0 किग्रा / हेक्टेयर	बुवाई के बाद, अंकुरण पूर्व	अधिकांश वार्षिक घास कुल के तथा कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रण
पेंडीमेथालिन + इमेजेथापायर	1.0 किग्रा / हेक्टेयर	बुवाई के बाद, अंकुरण पूर्व	व्यापक स्पेक्ट्रम के खरपतवारों का नियंत्रण
क्विजालोफॉप-एथिल	50 किग्रा / हेक्टेयर	अंकुरण पश्चात	घास कुल के खरपतवारों का नियंत्रण
मसूर			
पेंडीमेथालिन	1.0 किग्रा / हेक्टेयर	बुवाई के बाद, अंकुरण पूर्व	अधिकांश वार्षिक घास कुल के तथा कुछ चौड़ी पत्ती
क्विजालोफॉप-एथिल	50 किग्रा / हेक्टेयर	अंकुरण पश्चात	घास कुल के खरपतवारों का नियंत्रण
फेनॉक्साप्रॉप-पी-एथिल	80 किग्रा / हेक्टेयर	अंकुरण पश्चात	घास कुल के खरपतवारों का नियंत्रण
मटर			
पेंडीमेथालिन	1.0 किग्रा / हेक्टेयर	बुवाई के बाद, अंकुरण पूर्व	अधिकांश वार्षिक घास कुल के तथा कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रण
मेट्रिब्यूजिन	0.25 किग्रा / हेक्टेयर	बुवाई के बाद, अंकुरण पूर्व	घास कुल एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रण

क्विजालोफॉप-एथिल	50 किग्रा/हेक्टेयर	अंकुरण पश्चात	घास कुल के खरपतवारों का नियंत्रण
इमेजेथापायर	100 किग्रा/हेक्टेयर	अंकुरण पश्चात	व्यापक स्पेक्ट्रम के खरपतवारों का नियंत्रण किसानों के लिए महत्वपूर्ण सावधानियाँ

किसानों के लिए महत्वपूर्ण सावधानियाँ

1. शाकनाशी का सही चयन

शाकनाशी का चुनाव फसल और खरपतवार की सही पहचान के बाद ही करें। गलत दवा से फसल को नुकसान हो सकता है।

2. अनुशंसित मात्रा का पालन

शाकनाशी का प्रयोग निर्धारित मात्रा और समय पर ही करें। अधिक मात्रा से जड़ और ग्रंथियों को नुकसान हो सकता है।

3. मिट्टी की नमी और मौसम की स्थिति देखना

छिड़काव से पहले मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। तेज हवा या बारिश की संभावना होने पर छिड़काव न करें।

4. शाकनाशी का उचित मिश्रण

शाकनाशी का मिश्रण केवल कृषि विशेषज्ञ या लेबल के अनुसार ही करें, जिससे रसायनों का सही और सुरक्षित उपयोग हो।

5. खरपतवारों को बीज बनने से पहले नियंत्रण करना

खरपतवार बढ़कर बीज न बनने पाएं, जिससे खेत में उनकी संख्या बढ़ने से रोका जा सके।

6. शाकनाशी के लगातार प्रयोग से बचाव

लगातार एक ही प्रकार की शाकनाशी का प्रयोग न करें, इससे खरपतवार में रेसिस्टेंस विकसित हो सकता है।

7. संयमित यांत्रिक निराई-गुड़ाई

यांत्रिक निराई-गुड़ाई समय पर करें और आवश्यकतानुसार उपकरणों का उपयोग करें ताकि फसल की जड़े न क्षतिग्रस्त हों।

8. बीज और मिट्टी परीक्षण कराएं

बीज की गुणवत्ता जांचें और समय-समय पर मिट्टी का परीक्षण कर उर्वरक और पोषण की सही योजना बनाएं।

9. फसल चक्र अपनाएं

फसल चक्र से खरपतवारों के जीवन चक्र को बाधित करें और भूमि की उर्वरता बनाए रखें।

10. मल्विंग का सेवन करें

खेत की सतह पर मल्विंग करें ताकि मिट्टी की नमी बनी रहे और खरपतवारों की वृद्धि कम हो।

11. जैविक नियंत्रण को बढ़ावा दें

मित्र कीटों और जैविक नियंत्रण विधियों को अपनाएं जो खरपतवार नियंत्रण में सहायक होते हैं।

12. आधुनिक तकनीकों का उपयोग करें

ड्रोन व रिमोट सेंसिंग तकनीक से खेत में खरपतवार की पहचान करें और केवल प्रभावित क्षेत्रों में ही शाकनाशी का प्रयोग करें, जिससे लागत कम हो।

13. सिंचाई का सही प्रबंधन करें

उचित मात्रा में और सही समय पर सिंचाई करें ताकि फसल स्वस्थ रहे और खरपतवारों की वृद्धि नियंत्रित हो।

14. सतत शिक्षा और प्रशिक्षण लें

कृषि विज्ञान केंद्रों और विशेषज्ञों से नियमित संपर्क बनाए रखें और नई तकनीक तथा उपाय सीखें।

निष्कर्ष:

रबी दलहनी फसलों में खरपतवार प्रबंधन खेती की सफलता और आर्थिक लाभ के लिए अत्यंत आवश्यक है। चना, मसूर, और मटर जैसी फसलों की शुरुआती वृद्धि धीमी होने के कारण खरपतवारों से उनकी कड़ी प्रतिस्पर्धा होती है, जिससे पैदावार में भारी गिरावट आ सकती है। शुरुआती 30 से 45 दिनों के दौरान फसल की सुरक्षा और खरपतवार नियंत्रण बेहद महत्वपूर्ण होता है। समय पर बुवाई, प्रमाणित और साफ बीज, उचित पौध संख्या और कतार दूरी का सही प्रबंधन फसलों को मजबूत बनाकर खरपतवारों को नियंत्रित करता है।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन का पालन करना ही आज की जरूरत है। इसमें सांस्कृतिक, यांत्रिक और रासायनिक विधियों का संतुलित उपयोग फसल की वृद्धि को बढ़ावा देता है और पर्यावरण को सुरक्षित रखता है। यांत्रिक निराई-गुड़ाई से खेत की मिट्टी में हवा का संचार बढ़ता है, जिससे न केवल खरपतवार नियंत्रण होता है बल्कि फसल की जड़ों का विकास भी बेहतर होता है। जब मजदूरों की कमी या बड़े खेत हों, तब प्रीकैमर्जेन्स और पोस्टइमर्जेन्स शाकनाशी का विवेकपूर्ण और वैज्ञानिक तरीके से इस्तेमाल आवश्यक हो जाता है।

रासायनिक शाकनाशी का अत्यधिक या गलत प्रयोग दलहनी फसलों की ग्रंथियों को नुकसान पहुंचा सकता है, इसलिए इसकी मात्रा और प्रकार का चयन विशेषज्ञों की सलाह से करना चाहिए। साथ ही, शाकनाशी प्रतिरोध से बचने के लिए दवाओं का संयोजन और रोटेशन भी जरूरी है।

इस तरह, समय पर उचित प्रबंधन से खरपतवारों का नियंत्रण संभव है, जिससे कृषि लागत कम होती है और पैदावार 20 से 40 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। यह प्रणाली आर्थिक रूप से लाभदायक होने के साथ ही पर्यावरणीय –ष्टि से भी टिकाऊ है, जो किसानों के लिए दीर्घकालिक सफलता सुनिश्चित करती है।

बिहार में दलहनी फसलों की वैज्ञानिक खेती

¹गायत्री कुमारी, ²श्वेता कुमारी, ³अलीशा कुमारी, ⁴श्रुति सुमन, ⁵पंकज कुमार, ⁶चौदनी व ⁷अर्चना कुमारी

^{1,2,3,4,5,6,7}सहायक प्राध्यापक—सह—कनीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर

प्रस्तावना

दलहनी फसलें भारतीय कृषि, पोषण सुरक्षा तथा मृदा स्वास्थ्य की —ष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इन फसलों के बीजों में सामान्यतः लगभग 20&25 प्रतिशत प्रोटीन तथा 55&60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इनमें कैल्शियम, लौह तथा अन्य आवश्यक पोषक तत्व भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं। दलहनी फसलों की जड़ों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन का जैविक स्थिरीकरण करते हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और आगामी फसल को भी लाभ मिलता है। श्रोत के अनुसार दलहनी फसलों के बाद आने वाली फसल की उपज में लगभग 20&40 प्रतिशत तक वृद्धि देखी गई है। बिहार परंपरागत रूप से दलहनी फसलों का महत्वपूर्ण राज्य रहा है। किंतु सिंचाई सुविधाओं के विस्तार तथा धान और गेहूँ जैसी अधिक लाभकारी फसलों के बढ़ते प्रचलन के कारण दलहनी फसलों का क्षेत्रफल काफी घटा है। 1970—71 में बिहार में कुल दलहनी फसलों का क्षेत्रफल लगभग 16.45 लाख हेक्टेयर था, जो 2013—14 में लगभग 5.00 लाख हेक्टेयर रह गया। इसके विपरीत उत्पादकता में सुधार हुआ और 2013—14 में कुल दलहन उत्पादकता लगभग 1044 किग्रा/हेक्टेयर दर्ज की गई। इस स्थिति में खरीफ दलहनी फसलों की वैज्ञानिक खेती, फसल विविधीकरण, चावल—परती भूमि का उपयोग, उन्नत किस्मों का प्रसार तथा समेकित कीट एवं पोषक तत्व प्रबंधन बिहार में दलहन उत्पादन बढ़ाने के महत्वपूर्ण साधन हो सकते हैं।

बिहार में प्रमुख दलहनी फसलें

बिहार में खरीफ अथवा वर्षा ऋतु में मुख्य रूप से अरहर, मूंग, उड़द, लोबिया और कुल्थी जैसी फसलें उगाई जाती हैं। इसके अलावा फसल प्रणाली के अनुसार दलहनी फसलों को रबी एवं ग्रीष्म मौसम में भी शामिल किया जा सकता है। श्रोत में चना, मसूर, अरहर, मूंग, उड़द, खेसारी, मटर और कुल्थी को बिहार की प्रमुख दलहनी फसलों के रूप में वर्णित किया गया है।

1. अरहर

अरहर बिहार में महत्वपूर्ण खाद्य दलहन है। हालांकि इसका क्षेत्रफल लंबे समय में काफी घटा है, लेकिन इसकी उत्पादकता कई वर्षों में राष्ट्रीय औसत से अधिक रही है। 2024-25 में अरहर की उत्पादकता लगभग 1558 किग्रा/हेक्टेयर दर्ज की गई थी। इसके बावजूद लंबे समय तक खेत में रहने वाली किस्मों के कारण किसान इसे कम पसंद करते हैं। बिहार में परंपरागत रूप से 200 दिन से अधिक अवधि वाली अरहर की किस्में उगाई जाती रही हैं। ऐसी किस्में अधिक समय तक खेत में रहने के कारण अंतिम सूखा, पाला तथा अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों की चपेट में आ जाती हैं।

वैज्ञानिक खेती

अरहर की सफल खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली भूमि का चयन करना चाहिए। भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में खेत में जल निकास की व्यवस्था विशेष रूप से आवश्यक है। स्रोत में बिहार के ऊपरी क्षेत्रों में कम अवधि वाली अरहर को बढ़ावा देने की संभावना बताई गई है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जून के प्रथम पखवाड़े में बुवाई करने से पौधों को मानसून की अधिक वर्षा आने से पहले स्थापित होने का अवसर मिलता है। अधिक नमी सहन करने वाली किस्मों का विकास भी महत्वपूर्ण है।

अरहर को अकेली फसल के साथ-साथ मूंग, उड़द अथवा अन्य अल्प अवधि वाली फसलों के साथ अंतरवर्ती प्रणाली में लिया जा सकता है। कम अवधि वाली अरहर को गेहूँ जैसी रबी फसल के साथ उपयुक्त फसल चक्र में शामिल करने से भूमि का बेहतर उपयोग संभव है।

2. मूंग

मूंग कम अवधि वाली महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। बिहार में इसका उपयोग विभिन्न फसल प्रणालियों में किया जा सकता है। स्रोत के अनुसार बिहार में मूंग का क्षेत्रफल 1970-71 के लगभग 1.03 लाख हेक्टेयर से बढ़कर 2013-14 में लगभग 1.55 लाख हेक्टेयर हुआ और उस समय उत्पादकता लगभग 680 किग्रा/हेक्टेयर थी। 2024-25 में लगभग 9412 हेक्टेयर हुआ और उस समय उत्पादकता लगभग 602 किग्रा/हेक्टेयर थी। मूंग की विशेषता इसकी कम अवधि है, जिसके कारण इसे मुख्य फसलों के बीच उपलब्ध छोटे समय में भी उगाया जा सकता है। स्रोत में गेहूँ, सरसों और आलू की कटाई के बाद ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती की अच्छी संभावना बताई गई है। मूंग को गन्ने तथा सूरजमुखी के साथ अंतरवर्ती फसल के रूप में भी शामिल किया जा सकता है।

खेती की प्रमुख प्रथाएँ

- अच्छी जल निकास वाली भूमि का चयन करें।
- मानसून की शुरुआत के साथ समय पर बुवाई करें।
- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें।
- राइजोबियम तथा फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु से बीज उपचार करें।
- प्रारंभिक अवस्था में खेत को खरपतवार मुक्त रखें।
- जल-जमाव से बचाव करें।
- पीला मोजेक वायरस तथा उसके वाहक कीटों की नियमित निगरानी करें।
- फसल की कम अवधि का लाभ उठाकर इसे बहुफसली प्रणाली में शामिल करें।

3. उड़द

उड़द भी बिहार की महत्वपूर्ण अल्प अवधि वाली दलहनी फसल है। इसका अधिकांश उत्पादन वर्षा ऋतु में होता है। स्रोत के अनुसार 1970-71 में बिहार में मूंग और उड़द का क्षेत्रफल लगभग समान था, लेकिन

2024-25 तक उड़द का क्षेत्रफल घटकर लगभग 4.43 हजार हेक्टेयर रह गया। उड़द की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह कम अवधि में तैयार होने वाली तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली फसल है इसलिए इसे दो मुख्य फसलों के बीच शामिल करके फसल तीव्रता बढ़ाई जा सकती है।

वैज्ञानिक प्रबंधन

उड़द के लिए अच्छी जल निकासी वाली भूमि उपयुक्त होती है। समय पर बुवाई, संतुलित पोषण, खरपतवार नियंत्रण और स्वस्थ बीज का प्रयोग इसकी उत्पादकता बढ़ाने में सहायक हैं। बीज को उपयुक्त राइजोबियम कल्चर से उपचारित करने से नोड्यूलेशन तथा जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण बेहतर हो सकता है। उड़द में पीला मोजेक वायरस सहित विभिन्न रोगों और कीटों का प्रकोप हो सकता है। इसलिए रोगग्रस्त पौधों को समय पर निकालना, रोगमुक्त बीज का प्रयोग तथा कीट वाहकों का समेकित नियंत्रण आवश्यक है।

4. लोबिया

लोबिया गर्म एवं आर्द्र जलवायु में अच्छी तरह उगने वाली दलहनी फसल है। इसे दाने, हरी फलियों अथवा चारे के लिए उगाया जा सकता है। इसकी अल्प अवधि तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता के कारण इसे फसल विविधीकरण में शामिल किया जा सकता है। बिहार में लोबिया को वर्षा आधारित क्षेत्रों में अच्छी जल निकासी वाली भूमि पर उगाया जा सकता है। बुवाई से पहले बीज उपचार, उचित पौध संख्या, प्रारंभिक खरपतवार नियंत्रण तथा संतुलित पोषण इसकी सफल खेती के लिए आवश्यक हैं। लोबिया को गन्ने, सूरजमुखी अथवा अन्य चौड़ी कतार वाली फसलों के साथ अंतरवर्ती फसल के रूप में भी लिया जा सकता है। स्रोत में अल्प अवधि वाली मूंग, उड़द और लोबिया जैसी फसलों को गन्ने के साथ शामिल करने की संभावनाओं पर बल दिया गया है।

5. कुल्थी

कुल्थी अथवा हॉर्सग्राम अपेक्षाकृत कठोर परिस्थितियों में उगने वाली दलहनी फसल है। यह खरीफ तथा रबी दोनों मौसमों में उगाई जा सकती है और बिहार के कुछ क्षेत्रों में मिश्रित फसल के रूप में भी इसकी खेती की जाती है। 2024-25 में कुल्थी की उत्पादकता लगभग 808 किग्रा/हेक्टेयर दर्ज की गई थी। कुल्थी की एक महत्वपूर्ण विशेषता प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता है। स्रोत के अनुसार खेसारी और कुल्थी जैसी फसलें जल-जमाव वाली परिस्थितियों में भी अपेक्षाकृत बेहतर स्थापित हो सकती हैं, जबकि अधिकांश अन्य दलहनी फसलें जल-जमाव को सहन नहीं करतीं। इसलिए बिहार के ऐसे क्षेत्रों में जहाँ जल-जमाव या सूखे का जोखिम अधिक है, स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कुल्थी जैसी सहनशील फसलों को फसल प्रणाली में शामिल किया जा सकता है।

दलहनी फसलों में पोषक तत्व प्रबंधन

दलहनी फसलों की जड़ों में राइजोबियम जीवाणु नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं। हालांकि नई भूमि अथवा ऐसे क्षेत्रों में जहाँ संबंधित राइजोबियम की आबादी कम है, बीज को उपयुक्त राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना आवश्यक हो सकता है। स्रोत के अनुसार राइजोबियम आधारित जैव उर्वरक के बीज

उपचार से दलहनी फसलों की उत्पादकता में लगभग 10&12 प्रतिशत तक सुधार संभव है। फॉस्फोरस की उपलब्धता कम होने वाली मिट्टी में फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (PSB) का उपयोग लाभकारी हो सकता है। VAM/माइकोराइजा आधारित जैव उर्वरकों से फॉस्फोरस तथा जिंक जैसे पोषक तत्वों की उपलब्धता में सुधार हो सकता है। राइजोबियम तथा VAM का संयुक्त उपयोग केवल राइजोबियम की तुलना में बेहतर परिणाम दे सकता है। मृदा परीक्षण के आधार पर फॉस्फोरस, पोटैश, सल्फर तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता निर्धारित करनी चाहिए। स्रोत के अनुसार दलहन उत्पादक क्षेत्रों में सल्फर और जिंक की कमी सामान्य है तथा इनके प्रयोग से अच्छा आर्थिक लाभ प्राप्त हो सकता है।

जल प्रबंधन

अधिकांश दलहनी फसलें जल-जमाव के प्रति संवेदनशील होती हैं। इसलिए खेत में उचित जल निकास अत्यंत महत्वपूर्ण है। दूसरी ओर, वर्षा आधारित परिस्थितियों में सूखे की स्थिति भी उत्पादकता को प्रभावित करती है। चना, अरहर, मूंग, उड़द और मसूर जैसी फसलों में प्रजनन अवस्था के दौरान नमी की कमी उपज को प्रभावित कर सकती है।

जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो, वहाँ फसल की महत्वपूर्ण अवस्था पर सिंचाई से उपज बढ़ाई जा सकती है। स्रोत में गंभीर नमी की कमी की स्थिति में महत्वपूर्ण वृद्धि की संभावना बताई गई है। इसलिए सिंचाई जल का उपयोग फसल की संवेदनशील अवस्थाओं पर प्राथमिकता से करना चाहिए।

खरपतवार, कीट एवं रोग प्रबंधन

दलहनी फसलों में शुरुआती अवस्था के दौरान खरपतवार फसल के साथ पोषक तत्व, जल और प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। अतः बुवाई के शुरुआती 20&30 दिनों में खेत को खरपतवार मुक्त रखना आवश्यक है। समय पर निराई-गुड़ाई, उपयुक्त फसल घनत्व तथा आवश्यकता के अनुसार अनुशासित खरपतवार नियंत्रण उपाय अपनाने चाहिए। दलहनी फसलों में अनेक कीट और रोग पाए जाते हैं। स्रोत के अनुसार फली छेदक (*Helicoverpa armigera*) प्रमुख कीटों में से एक है। इसके अतिरिक्त फली मक्खी, विल्ट, जड़ सड़न, स्टेरिलिटी मोजेक वायरस, पीला मोजेक वायरस और पाउडरी मिल्ड्यू जैसी समस्याएँ भी महत्वपूर्ण हैं। निमेटोड भी कुछ क्षेत्रों में उपज को प्रभावित कर सकते हैं।

इसलिए समेकित कीट प्रबंधन (IPM) अपनाना चाहिए। इसमें स्वस्थ बीज, फसल चक्र, रोगरोधी/सहनशील किस्में, खेत की नियमित निगरानी, जैविक नियंत्रण तथा आवश्यकता के अनुसार रासायनिक नियंत्रण को शामिल किया जाता है। स्रोत में फली छेदक नियंत्रण के लिए जैविक एजेंटों जैसे NPV और *Bacillus thuringiensis* के उपयोग की संभावना भी बताई गई है।

बिहार में चावल-परती भूमि का उपयोग

बिहार में दलहन उत्पादन बढ़ाने का सबसे बड़ा अवसर चावल-परती भूमि का उपयोग है। स्रोत के अनुसार राज्य में लगभग 22 लाख हेक्टेयर चावल-परती भूमि ऐसी है जिसका उपयोग दलहनी फसलों के उत्पादन के लिए किया जा सकता है। भागलपुर, साहिबगंज, गया, औरंगाबाद, कटिहार और किशनगंज

जैसे क्षेत्रों में इस प्रकार की भूमि का उल्लेख किया गया है। मध्यम एवं लंबी अवधि वाली धान की खेती के बाद कई क्षेत्रों में सिंचाई की कमी या खेत खाली होने में देरी के कारण रबी फसल नहीं ली जाती। ऐसी परिस्थितियों में बची हुई मिट्टी की नमी का उपयोग करके मसूर, मूंग, उड़द, खेसारी, मटर और अन्य दलहनी फसलें उगाई जा सकती हैं। विशेष रूप से अधिक नमी वाले निचले क्षेत्रों में मसूर को चने की अपेक्षा अधिक आश्वस्त फसल माना गया है। चावल-मसूर प्रणाली बिहार के निचले क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण विकल्प हो सकती है।

धान में रिले क्रॉपिंग

बिहार में उपलब्ध स्थानीय तकनीक का उपयोग करके धान की कटाई से 7-10 दिन पहले खड़ी धान की फसल में मूंग, उड़द और खेसारी जैसे दलहनों के बीज का छिड़काव किया जा सकता है। इससे धान की कटाई के बाद उपलब्ध अवशिष्ट नमी का उपयोग दलहन के अंकुरण एवं प्रारंभिक वृद्धि के लिए किया जाता है। इस प्रणाली को सफल बनाने के लिए ऐसी किस्मों की आवश्यकता है जो कम अवधि में पकें, अवशिष्ट नमी में अच्छी तरह स्थापित हों तथा धान की कटाई के बाद उपलब्ध समय में अपनी जीवन अवधि पूरी कर सकें।

प्रमुख समस्याएँ

बिहार में दलहन उत्पादन के सामने कई जैविक, अजैविक तथा सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ हैं। सूखा, जल-जमाव, तापमान की चरम स्थितियाँ, पाला, तेज हवा, मिट्टी की लवणता/क्षारीयता, अम्लीयता तथा पोषक तत्वों की कमी प्रमुख अजैविक बाधाएँ हैं। इसके अतिरिक्त किसानों को प्रमाणित एवं उन्नत बीज की पर्याप्त उपलब्धता नहीं होना भी एक बड़ी समस्या है। स्रोत के अनुसार भारत में अनेक उन्नत किस्में विकसित होने के बावजूद उत्पादन श्रृंखला में सीमित संख्या में किस्में उपलब्ध हैं तथा बीज प्रतिस्थापन दर भी कम है। दलहनों की कम लाभप्रदता, उपज में अस्थिरता, कीट-रोगों का प्रकोप, सिंचाई की कमी तथा सुनिश्चित बाजार का अभाव भी किसानों को दलहन की जगह धान एवं गेहूँ जैसी फसलों की ओर ले जाता है। स्रोत में किसानों की समस्याओं में कीट प्रकोप, कम लाभप्रदता, उपज अस्थिरता और सुनिश्चित बाजार की कमी को प्रमुख कारण बताया गया है।

कटाई के बाद प्रबंधन एवं विपणन :-दलहनी फसलों में कटाई के बाद होने वाली क्षति भी महत्वपूर्ण है। स्रोत के अनुसार कुल दलहन उत्पादन का लगभग 9.5 प्रतिशत हिस्सा कटाई-पश्चात विभिन्न चरणों में नष्ट हो सकता है, जिसमें भंडारण का योगदान सबसे अधिक है। दलहन भंडारण कीटों से विशेष रूप से प्रभावित होते हैं। इसलिए किसानों को वैज्ञानिक भंडारण संरचनाओं, जैसे धातु भंडारण डिब्बों/बिन आदि का उपयोग करना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में मिनी दाल मिलों की स्थापना से स्थानीय स्तर पर प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन तथा रोजगार के अवसर बढ़ाए जा सकते हैं। उत्पादक समूहों एवं प्रसंस्करण समूहों के माध्यम से सामूहिक विपणन भी किसानों के लिए लाभकारी हो सकता है।

दलहन उत्पादन बढ़ाने की रणनीति

बिहार में दलहन उत्पादन बढ़ाने के लिए निम्नलिखित रणनीतियाँ महत्वपूर्ण हैंक

1. कम अवधि तथा अधिक उपज देने वाली किस्मों का प्रसार।
2. सूखा, जल-जमाव, तापमान एवं रोगों के प्रति सहनशील किस्मों का विकास।
3. प्रमाणित बीज की उपलब्धता बढ़ाना।
4. राइजोबियम, PSB तथा VAM जैसे जैव उर्वरकों का उपयोग बढ़ाना।
5. चावल-परती भूमि में दलहनी फसलों का विस्तार।
6. धान में रिले क्रॉपिंग को बढ़ावा देना।
7. मूंग एवं उड़द जैसी अल्प अवधि वाली फसलों को फसल चक्र में शामिल करना।
8. अरहर को अंतरवर्ती फसल के रूप में बढ़ावा देना।
9. कम नमी तथा अधिक नमी वाले क्षेत्रों के लिए अलग-अलग फसल प्रणाली विकसित करना।
10. समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन अपनाना।
11. किसानों को प्रशिक्षण, प्रदर्शन एवं किसान मेले के माध्यम से तकनीकी जानकारी देना।
12. सिंचाई एवं जल निकास की सुविधा बढ़ाना।
13. दलहन की कटाई, मड़ाई एवं प्रसंस्करण के लिए कृषि यंत्रीकरण को बढ़ावा देना।
14. भंडारण एवं बाजार अवसंरचना का विकास।
15. फसल बीमा और संस्थागत ऋण को प्रभावी बनाना।
16. किसान उत्पादक समूहों के माध्यम से सामूहिक उत्पादन एवं विपणन को प्रोत्साहित करना।

निष्कर्ष :-बिहार में दलहनी फसलों के उत्पादन की अपार संभावनाएँ हैं। यद्यपि पिछले दशकों में धान और गेहूँ के विस्तार के कारण दलहनी फसलों का क्षेत्रफल काफी घटा है, लेकिन उत्पादकता में सुधार की संभावनाएँ स्पष्ट हैं। दलहन केवल प्रोटीन एवं पोषण सुरक्षा का साधन नहीं हैं, बल्कि वे मिट्टी में जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से मृदा स्वास्थ्य सुधारने तथा धान-गेहूँ आधारित फसल प्रणालियों की स्थिरता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बिहार में लगभग 22 लाख हेक्टेयर चावल-परती क्षेत्र का उपयोग, अल्प अवधि वाली अरहर, मूंग और उड़द का प्रसार, निचले क्षेत्रों में चावल-मसूर प्रणाली, रिले क्रॉपिंग तथा गन्ने जैसी फसलों के साथ अंतरवर्ती दलहन खेती उत्पादन बढ़ाने के प्रभावी माध्यम हो सकते हैं। साथ ही गुणवत्तापूर्ण बीज, जैव उर्वरक, संतुलित पोषण, जल प्रबंधन, IPM, कृषि यंत्रीकरण, भंडारण तथा बेहतर बाजार व्यवस्था पर समान रूप से ध्यान देना होगा। अतः बिहार में “दलहन आधारित फसल विविधीकरण” को केवल उत्पादन बढ़ाने की तकनीक के रूप में नहीं, बल्कि मृदा स्वास्थ्य, पोषण सुरक्षा, जल एवं संसाधन संरक्षण, जलवायु सहनशीलता और किसानों की आय बढ़ाने वाली समग्र कृषि रणनीति के रूप में अपनाया जाना चाहिए। इससे राज्य की धान-गेहूँ आधारित कृषि प्रणाली अधिक टिकाऊ, विविधीकृत और लाभकारी बन सकती है।

दलहनी एवं तिलहनी फसलों का उत्पादन बढ़ाने में मीडिया आधारित रणनीति की भूमिका

सीमा¹, सुबोर्ना रॉय चौधरी², शिवशंकर आचार्य³, अनुज कुमार⁴ एवं विवेक कुमार⁵

सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर

भूमिका

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में दलहनी एवं तिलहनी फसलें पोषण सुरक्षा, मिट्टी की उर्वरता, आय वृद्धि तथा तेल आत्मनिर्भरता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। दलहन प्रोटीन का प्रमुख स्रोत है जबकि तिलहन देश की खाद्य तेल आवश्यकताओं को पूरा करने का आधार हैं। फिर भी प्रति हेक्टेयर उत्पादकता अभी भी कई विकसित देशों की तुलना में कम है, जिसके कारण भारत को आज भी खाद्य तेल एवं कुछ दलहनों का आयात पड़ता है।

इस अंतर के पीछे केवल प्राकृतिक संसाधन या तकनीक की कमी नहीं, बल्कि सही जानकारी का समय पर न पहुँच पानी भी एक प्रमुख कारण है। किसान अक्सर पारंपरिक तरीके अपनाते रहते हैं जबकि उन्नत किस्में, वैज्ञानिक प्रबंधन, मौसम आधारित सलाह एवं बाजार की जानकारी उनके निर्णयों को अधिक लाभप्रद बना सकती है। यह विषय क्षेत्र है जहाँ मीडिया आधारित रणनीतियाँ अत्यन्त प्रभावी सिद्ध हो सकती हैं।



मीडिया और कृषि संचार की बदलती तस्वीर :- पिछले दो दशकों में कृषि संचार का स्वरूप तेजी से बदला है। जहाँ पहले रेडियो, आकाशवाणी और कृषि पत्रिकाओं ही मुख्य साधन थे, वहीं आज डीडी किसान चैनल, सामुदायिक रेडियो, मोबाईल एस.एम.एस. सलाह, व्हाट्सएप ग्रुप, यूट्यूब, फेसबुक पेज, पॉडकास्ट, मोबाईल ऐप, डिजिटल ग्रीन जैसे वीडियो आधारित प्लेटफार्म कृषि संदेशों को नई गति दे रहे हैं।

जब किसान अपनी भाषा में, अपनी परिस्थिति से जुड़े हुए उदाहरणों के साथ संदेश सुनते या देखते हैं, तो उनका ज्ञान स्तर, तकनीक अपनाने की दर तथा उत्पादन तीनों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह संकेत देता है कि यदि कार्यक्रमों में दलहन एवं तिलहन जैसी अपेक्षाकृत उपेक्षित फसलों पर अधिक ध्यान दिया जाय तो मीडिया के माध्यम से इन फसलों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है।

मीडिया आधारित प्रमुख रणनीतियाँ

रेडियो एवं सामुदायिक रेडियो

1. पारम्परिक रेडियो कार्यक्रम आकाशवाणी के “किसानवाणी” जैसे कार्यक्रमों ने वर्षों से किसानों को मौसम पूर्वानुमान, कीट नियंत्रण, उर्वरक सिफारिश तथा नई किस्मों की जानकारी उपलब्ध कराई है। रेडियो कार्यक्रम जानकारीयों समय पर देकर किसानों के निर्णयों को प्रभावित करते हैं जिससे उनकी लागत घटती है और लाभ बढ़ता है।
2. **कृषि सामुदायिक रेडियो की नई पहल :-** हाल के वर्षों में विविध विश्वविद्यालयों और कृषि संस्थानों द्वारा कृषि सामुदायिक रेडियो स्थापित किये गए हैं जहाँ स्थानीय भाषा एवं बोली में कृषि कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं जैसे बिहार कृषि विश्वविद्यालय की ग्रीन बिहार सामुदायिक रेडियो (Green FM 90.8 MHz)। बिहार कृषि विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आने वाले कृषि विज्ञान केन्द्र भी आकाशवाणी व स्थानीय मीडिया के साथ मिलकर फसल-विशेष वाताएँ, फोन-इन प्रोग्राम, विशेष दलहन-तिलहन कार्यक्रम नियमित रूप से कराते हैं, जिनका प्रसारण रेडियो पर होता है। इसी प्रकार कर्नाटक के राइचूर कृषि विश्वविद्यालय द्वारा शुरू किया गया “कृषि समुदाय बनूली केन्द्र” (Agri FM 89.6 MHz) वर्ष 2023 से आसपास के लगभग 20 किलोमीटर क्षेत्र के गाँवों तक कृषि कार्यक्रम पहुँचा रहा है।

कृषि पत्रिकाएँ कृषि ज्ञान का सशक्त माध्यम :-

कृषि पत्रिकाएँ जैसे कृषि जागरण, किसान विश्व, कुरुक्षेत्र, कृषि विशेषांक, योजना पत्रिका, आइ. सी.ए.आर. एवं कृषि विश्वविद्यालयों की हिन्दी बुलेटिनें किसानों तक सरल भाषा व उदाहरणों के माध्यम से कृषि संदेश पहुँचाती हैं। इन पत्रिकाओं में दलहन एवं तिलहन उत्पादन वृद्धि में कृषि पत्रिकाओं की विशेष भूमिका जैसे—

- उन्नत किस्मों का प्रसार
- वैज्ञानिक तकनीकों का प्रचार
- कीट एवं रोग प्रबंधन
- मौसम आधारित सलाह
- सरकारी योजनाएँ
- योजनाओं एवं एम.एस.पी. की जानकारी
- बाजार एवं प्रसंस्करण संबंधी मार्गदर्शन
- सफलता-कथाएँ—व्यवहार परिवर्तन का माध्यम

टेलीविजन एवं डीडी किसान चैनल की भूमिका :-

सरकार ने किसानों के लिए विशेष रूप से डीडी किसान चैनल वर्ष 2015 से प्रारम्भ किया। इस चैनल का उद्देश्य ग्रामीण एवं कृषि समुदाय को खेती से संबंधित नवीनतम जानकारी, मौसम-पूर्वानुमान, मंडी भाव, सरकारी योजनाओं की जानकारी एवं सफलता कथाएँ लगातार उपलब्ध कराना है।

एक अध्ययन में पाया गया कि डीडी किसान देखने वाले किसानों का ज्ञान और तकनीक अपनाने की सोच, बाकी किसानों से बेहतर होती है। लगभग 66 प्रतिशत किसानों का चैनल के प्रति नजरिया सकारात्मक था। हालाँकि अभी चैनल पर ज्यादातर कार्यक्रम धान, गेहूँ, मक्का और बाजरा पर आते हैं, जबकि दलहन और तिलहन को कम जगह मिलती है। अगर चैनल पर 'दलहन सप्ताह', 'तिलहन विशेष' या 'प्रोटीन वाली फसलों' जैसे खास कार्यक्रम शुरू हों, तो ये फसलें भी ज्यादा लोकप्रिय हो सकती हैं।

डिजिटल एवं वीडियो आधारित विस्तार :-

1. **डिजिटल ग्रीन (Digital Green) :-** डिजिटल ग्रीन एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है जो किसानों की भागीदारी के साथ, उनके ही गाँवों में, उनकी भाषा में, छोटे-छोटे वीडियो बनवाकर और दिखाकर कृषि विस्तार का कार्य करता है। कई राज्यों में ग्रामीण आजीविका मिशनों के साथ मिलकर यह मॉडल लागू किया गया है।

डिजिटल ग्रीन के साक्ष्य समीक्षा रिपोर्ट एवं नवीनतम सारों में यह दिखाया गया कि यह मॉडल पारम्परिक विस्तार की तुलना में कम लागत में अधिक किसानों तक पहुँच बना सकता है, और किसानों के बीच "अपने जैसे किसानों" द्वारा बताए गए संदेशों को अधिक विश्वसनीय माना जाता है। बिहार में महिला किसानों के साथ यह पाया गया कि वीडियो-आधारित प्रशिक्षण से किसानों द्वारा सिखाई गई तकनीक अपनाने की दर, उत्पादकता और लाभ तीनों में सुधार हुआ। यदि इन्हीं वीडियो-आधारित मॉडलों को दलहन एवं तिलहन के लिए अनुकूलित किया जाय-जैसे चना में राइजोबियम बीजोपचार, अरहर-सोयाबीन की इंटरक्रॉपिंग, सरसों में समन्वित कीट प्रबंधन, मूँगफली में पंक्ति बुवाई और जिप्सम का उपयोग किसानों को व्यावहारिक स्तर पर तकनीक अपनाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

2. **iSAT मोबाईल प्लेटफार्म और निर्णय-समर्थन :-** हाल ही में एक ICT-सक्षम प्लेटफार्म पर किए गए अध्ययन में पाया गया कि सलाह प्राप्त करने वाले किसानों में से लगभग 80 प्रतिशत किसानों ने प्राप्त जानकारी का उपयोग कटाई संबंधी निर्णय, 79 प्रतिशत ने बुवाई का समय और लगभग 65 प्रतिशत ने भूमि तैयारी के बारे में निर्णय लेने में किया। इस प्रकार के प्लेटफार्म जब दलहन और तिलहन के लिए फसल-विशिष्ट सलाह देने लगे, जैसे अगले पाँच दिनों तक वर्षा का पूर्वानुमान, चना-सरसों की बुवाई अभी टालें, अरहर की फलियाँ बनने के समय तापमान-नमी स्थिति के अनुसार कीटनाशक का छिड़काव करें या न करें तो इनसे फसल हानि कम हो सकती है और उत्पादन स्थिर/बढ़ सकता है।
3. **मोबाईल-आधारित SMS और वॉयस सलाह सेवाएँ :-** भारत सरकार एवं निजी कम्पनियों द्वारा पिछले वर्षों में अनेक मोबाईल-आधारित सलाह सेवाएँ शुरू की गई हैं, जैसे किसान मोबाईल सलाह सेवा (KMAS), फार्म साइंस सेन्टर, SMS सर्विस, रॉयटर्स मार्केट लाईट (RML), आदि। कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा चलाई जा रही किसान मोबाईल सलाह सेवा SMS के माध्यम से आवश्यकता-आधारित कृषि जानकारी स्थानीय भाषा में भेजी जाती है। अध्ययन से पता चला है कि यह सेवा किसानों तक

संदेश पहुँचाने का तेज और प्रभावी माध्यम बनी है और कई किसानों ने इसे उपयोगी माना है। यदि इन SMS सेवाओं में दलहन एवं तिलहन के लिए विशेष “फसल-कैलेंडर आधारित अलर्ट” भेजे जाएँ। बुवाई से पहले बीजोपचार स्मरण, फूल आने पर सूक्ष्म पोषक तत्व स्प्रे सलाह, कटाई के ठीक पहले मौसम पूर्वानुमान आधारित चेतावनी, तो अनेक फसल हानियाँ रोकी जा सकती है और उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

4. **मोबाईल-आधारित SMS और वॉयस सलाह सेवाएँ में BAU, Sabour की भूमिका :-** BAU, Sabour किसानों को सही समय पर, सरल भाषा में, मौसम-आधारित और फसल-विशेष सलाह मोबाईल पर उपलब्ध कराता है, ताकि किसान वैज्ञानिक आधार पर निर्णय ले सकें और जोखिम घटे। इसमें—

(क) Agro-Meteorology विभाग द्वारा IMD के Gramin Krishi Mousham Sewa (GKMS) के साथ मिलकर मौसम आधारित फसल-सलाह तैयार की जाती है।

(ख) District Agro-Met Units (DAMU)- कृषि विज्ञान केन्द्र में स्थापित बी.ए.यू. के अधीन आने वाले कृषि विज्ञान केन्द्रों में DAMU इकाईयाँ किसानों को SMS/WhatsApp/Voice Call/ Radio/Meeting के जरिए सलाह भेजती है।

(ग) Kisan Mobile Advisory (KMA) सिस्टम :- किसानों को रजिस्टर्ड मोबाइल नंबर पर नियमित संदेश भेजे जाते हैं।

मल्टीमीडिया एवं सोशल मीडिया : “पूसा समाचार” जैसी पहल — ICAR-IARI, New Delhi द्वारा संचालित “पूसा समाचार” एक अभिनव मल्टीमीडिया-आधारित मॉडल है जिसमें वीडियो, सोशल मीडिया, वेबसाइट, बेविनार और अन्य माध्यमों के जरिए किसानों को वैज्ञानिक सलाह प्रदान की जाती है। एक अध्ययन में पाया गया है कि इस मॉडल ने शोध संस्थानों को ‘नॉलेज हब’ के रूप में स्थापित करते हुए सोशल मीडिया की शक्ति का उपयोग कर किसानों तक बहुआयामी सलाह पहुँचाने में सफलता पाई है।

- 2026 में सोशल मीडिया केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि ‘डिजिटल पाठशाला’ बन चुका है।
- **यूट्यूब (YouTube) :** कृषि वैज्ञानिकों द्वारा स्टेप-बाय-स्टेप खेती की विधियों के वीडियो, जैसे ‘तिलहन की बुवाई हेतु रिज एंड फरो पद्धति’, किसानों के बीच अत्यंत लोकप्रिय है।


बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर
 भागलपुर - 813210 (बिहार)

स्वादा

जवाहर

LIVE
 प्रयोगशाला से खेत तक
 प्रत्येक माह के द्वितीय और चतुर्थ शनिवार छोड़कर
 हमारे यूट्यूब चैनल BAU SABOUR पर

दिनांक	विषय	समय
02-08-2025	बारिश के मौसम में पशुओं का रख रखाव	पूर्वाह्न 11-30 बजे से
30-08-2025	धान में खरपतवार नियंत्रण एवं सिचाई प्रबंधन	पूर्वाह्न 11-30 बजे से
06-09-2025	प्राकृतिक खेती	पूर्वाह्न 11-30 बजे से
20-09-2025	घरेलू सब्जी हेतु छत पर बागवानी	पूर्वाह्न 11-30 बजे से
04-10-2025	धान में कीट एवं रोग प्रबंधन	पूर्वाह्न 11-30 बजे से
18-10-2025	मशरूम उत्पादन तकनीक	पूर्वाह्न 11-30 बजे से
01-11-2025	मछली पालन	पूर्वाह्न 11-30 बजे से
15-11-2025	रबी फसलों में लगाने वाले कीट एवं रोग प्रबंधन	पूर्वाह्न 11-30 बजे से
29-11-2025	वैज्ञानिक विधि से गेहूँ की खेती	पूर्वाह्न 11-30 बजे से
06-12-2025	जाड़े के मौसम में पशुओं का रखरखाव	पूर्वाह्न 11-30 बजे से
20-12-2025	दलहन और तिलहन की फसलों में कीट एवं रोग नियंत्रण	पूर्वाह्न 11-30 बजे से

इस कार्यक्रम से जुड़ने के लिए अभी सब्सक्राइब करें हमारे यूट्यूब चैनल एवं वेब आइकॉन को दबाएं

- **व्हाट्सएप (WhatsApp) समूह :-** ग्राम स्तर पर बने समूहों में किसान अपनी फसलों के फोटो साझा करते हैं, जिनका समाधान विशेषज्ञ **real-time** में देते हैं।
- **इन्फ्लुएंसर मार्केटिंग :-** 'प्रगतिशील किसान' अब कृषि इन्फ्लुएंसर के रूप में उभर रहे हैं, जो अपने अनुभवों से अन्य किसानों को प्रेरित कर रहे हैं।
- **इलेक्ट्रॉनिक मीडिया प्रोडक्शन सेंटर (BAU) की स्थापना :-** बिहार कृषि विश्वविद्यालय ने राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (RKVY) के तहत इलेक्ट्रॉनिक मीडिया प्रोडक्शन सेंटर स्थापित किया है, जिसमें इन्फॉर्मेशन और मल्टीमीडिया लर्निंग सामग्री तैयार की जाती है। यह केन्द्र दूरस्थ शिक्षा और कृषि समुदायों तक वैज्ञानिक सलाह पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह केन्द्रीयकृत प्रयास BAU को डिजिटल कृषि विस्तार में सक्षम बनाता है जहाँ किसान वीडियो, ऑडियो और सामुदायिक मीडिया सामग्री के जरिए कृषि-व्यवहारिक ज्ञान सीधे प्राप्त कर सकते हैं—खासकर दलहन एवं तिलहन से जुड़ी उन्नत तकनीकों के बारे में।

हाल के अनुभवों से उभरती सीख :-

ऊपर उल्लेखित विविध अध्ययनों और मीडिया पहल का विश्लेषण करने पर कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु सामने आते हैं—

- विश्वसनीयता और भाषा— किसानों के लिए स्थानीय भाषा, सरल शैली और 'अपने जैसे किसान' द्वारा प्रस्तुत संदेश अधिक प्रभावी होते हैं।
- सामुदायिक रेडियो, वीडियो—आधारित प्रशिक्षण एवं महिला संचालित कार्यक्रमों ने यह साबित किया है कि भाषा और संदर्भ के अनुकूल संदेश अधिक स्वीकार्य होते हैं।
- मल्टी चैनल रणनीति—केवल रेडियो या केवल टीवी के बजाय रेडियो+टीवी+SMS+सोशल मीडिया+सामुदायिक कार्यक्रम का संयोजन अधिक प्रभावशाली होता है। उदाहरण के लिए डीडी

किसान पर दिखाए गए कार्यक्रमों को छोटे क्लिप यदि व्हाट्सएप समूहों, यूट्यूब चैनलों और KVK के SMS के साथ जोड़े जाएँ तो संदेश बहु-स्तरीय रूप से सुदृढ़ हो सकता है।

- निर्णय-समर्थन, न कि केवल सूचना— iSAT तथा कुछ मोबाईल प्लेटफार्म के अनुभव बताते हैं कि किसान केवल सूचना नहीं, बल्कि निर्णय लेने में सीधी मदद चाहते हैं।

महिला और युवा किसानों की भूमिका :-

- संगम रेडियो तथा डिजिटल ग्रीन के वीडियो आधारित मॉडलों में महिलाओं व युवाओं की सक्रिय भागीदारी से समुदाय में विश्वास और अपनाने की दर बढ़ी है।
- फसल-विशिष्ट माइक्रो प्लानिंग की आवश्यकता— अधिकांश सामान्य कार्यक्रम “कृषि” या “रबी-खरीफ” पर व्यापक रूप से बात करते हैं लेकिन दलहन और तिलहन के लिए फसल-विशिष्ट, क्षेत्र विशिष्ट एवं मौसम विशेष संदेशों की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय पोषण सुरक्षा में दलहन एवं तिलहन फसलों की भूमिका

¹श्रुति सुमन, ²अर्णब रॉय चौधरी, ³अलीशा कुमारी, ⁴विनोद कुमार, ⁵पंकज कुमार, ⁶संजय कुमार,

⁷सुबोर्ना रॉय चौधरी एवं ⁸गायत्री कुमारी

⁶विश्वविद्यालय प्राध्यापक—सह—मुख्य वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

² एवं ⁷संबद्ध प्राध्यापक—सह—वरीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

^{1,3,4,5,8}सहायक प्राध्यापक—सह—कनीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

भारतीय कृषि प्रणाली में दलहन और तिलहन फसलें सदियों से महत्वपूर्ण रही हैं, लेकिन राष्ट्रीय पोषण सुरक्षा में इनकी भूमिका को अक्सर कम करके आंका जाता है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में, जहाँ बड़ी आबादी अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और अपनी पोषण आवश्यकताओं के लिए कृषि पर निर्भर करती है, इन फसलों का महत्व और भी बढ़ जाता है। वैश्विक स्तर पर भी, संयुक्त राष्ट्र खाद्य और कृषि संगठन (FAO) के अनुसार, विश्व की आबादी का लगभग 11% कुपोषण का शिकार है, और प्रोटीन तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी इसका एक बड़ा कारण है। भारत में, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5) के आँकड़े बताते हैं कि 5 वर्ष से कम आयु के 35.5% बच्चे नाटपन (stunting) से ग्रसित हैं, 32.1% कम वजन (underweight) के हैं, और 19.3% बच्चे कमजोर हैं। वयस्क महिलाओं में भी 24% और पुरुषों में 22% दुबलेपन (thinness) के शिकार हैं, जबकि आयरन की कमी से होने वाला एनीमिया महिलाओं में 57% और बच्चों में 67% तक पाया जाता है। ये आँकड़े स्पष्ट रूप से देश में पोषण सुरक्षा की गंभीर चुनौती को दर्शाते हैं। इस पृष्ठभूमि में, दलहन और तिलहन फसलें न केवल खाद्य सुरक्षा बल्कि पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने में एक महत्वपूर्ण समाधान प्रस्तुत करती हैं।

दलहन फसलों का पोषण संबंधी महत्व :

दलहन फसलें, जिनमें दालें जैसे चना, अरहर, मूंग, मसूर, उड़द, मटर, राजमा, लोबिया और सोयाबीन शामिल हैं, प्रोटीन के सबसे सस्ते और सुलभ स्रोतों में से एक हैं। ये विशेष रूप से शाकाहारी आबादी के लिए महत्वपूर्ण हैं, जो अपनी प्रोटीन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मांस उत्पादों पर निर्भर नहीं करते हैं।

1. उच्च प्रोटीन सामग्री: दालों में औसतन 20–25% प्रोटीन होता है, जो अनाज (लगभग 8–12%) की तुलना में काफी अधिक है। सोयाबीन में तो यह 38–42% तक होता है, जो इसे प्रोटीन का एक उत्कृष्ट स्रोत बनाता है। यह उच्च प्रोटीन सामग्री बच्चों के विकास, मांसपेशियों के निर्माण और शरीर की टूट-फूट की मरम्मत के लिए आवश्यक है।

2. अमीनो एसिड प्रोफाइल: दलहनों में आवश्यक अमीनो एसिड, विशेष रूप से लाइसिन, की अच्छी मात्रा होती है जो अनाजों (जैसे चावल और गेहूँ) में अक्सर कम पाया जाता है। जब दलहनों को अनाजों के

साथ मिलाकर खाया जाता है (उदाहरण के लिए, दाल-चावल या दाल-रोटी), तो ये एक दूसरे के अमीनो एसिड की कमी को पूरा करते हैं और एक पूर्ण प्रोटीन भोजन बनाते हैं, जो शरीर के लिए सभी आवश्यक अमीनो एसिड प्रदान करता है।

3. फाइबर का समृद्ध स्रोत: दलहन घुलनशील और अघुलनशील दोनों प्रकार के आहार फाइबर से भरपूर होते हैं। घुलनशील फाइबर रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने और कोलेस्ट्रॉल को कम करने में मदद करता है, जबकि अघुलनशील फाइबर पाचन स्वास्थ्य को बनाए रखने और कब्ज को रोकने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उच्च फाइबर सामग्री आंतों के स्वास्थ्य को बढ़ावा देती है और कई गैर-संक्रामक रोगों जैसे मधुमेह, हृदय रोग और कुछ प्रकार के कैंसर के जोखिम को कम करती है।

4. सूक्ष्म पोषक तत्वों की प्रचुरता: दालें लौह (आयरन), जिंक, फोलेट, मैग्नीशियम, पोटेशियम और बी विटामिन (विशेषकर थायमिन, राइबोफ्लेविन, नियासिन, पैंटोथेनिक एसिड और पाइरिडोक्सिन) जैसे कई महत्वपूर्ण सूक्ष्म पोषक तत्वों का उत्कृष्ट स्रोत हैं।

- **आयरन:** आयरन की कमी से होने वाला एनीमिया भारत में एक बड़ी सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है। दालें इस कमी को दूर करने में सहायक हैं।
- **जिंक:** जिंक प्रतिरक्षा प्रणाली के कार्य, घाव भरने और कोशिका वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है।
- **फोलेट (विटामिन बी9):** फोलेट विशेष रूप से गर्भवती महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह भ्रूण के तंत्रिका ट्यूब दोषों को रोकने में मदद करता है।
- **पोटेशियम:** यह रक्तचाप को नियंत्रित करने और हृदय स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायक है।
- **विटामिन-बी:** यह ऊर्जा चयापचय और तंत्रिका तंत्र के कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

5. निम्न ग्लाइसेमिक इंडेक्स: अधिकांश दलहनों का ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है, जिसका अर्थ है कि वे रक्त शर्करा के स्तर को धीरे-धीरे बढ़ाते हैं, जिससे यह मधुमेह रोगियों के लिए एक उत्कृष्ट भोजन विकल्प बन जाता है।

दलहन फसलों की कृषि संबंधी भूमिका:

दलहन फसलें न केवल पोषण के लिए महत्वपूर्ण हैं, बल्कि कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के लिए भी बेहद फायदेमंद हैं:

1. मिट्टी की उर्वरता में सुधार: दलहन फसलें अपनी जड़ों में राइजोबियम बैक्टीरिया के माध्यम से वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करती हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है।

2. **फसल विविधीकरण:** फसल चक्र में दलहन को शामिल करने से कीटों और बीमारियों के दबाव को कम करने में मदद मिलती है और मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार होता है।

3. **जलवायु लचीलापन:** दलहन फसलें अक्सर कम पानी और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उगने में सक्षम होती हैं, जिससे वे जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक लचीली होती हैं।

फसल विविधीकरण में दलहन का महत्व

दलहन फसलें कृषि प्रणालियों में फसलविविधीकरण (Crop Diversification) के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह एक ऐसी रणनीति है जिसमें किसान एक ही फसल पर निर्भर रहने के बजाय विभिन्न प्रकार की फसलें उगाते हैं। इसके कई लाभ हैं:

1. **मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार:** दलहन फसलें मिट्टी में नाइट्रोजन जोड़ कर उस की उर्वरता बढ़ाती हैं। यह अनाज जैसी नाइट्रोजन-उपभोक्ता फसलों के बाद मिट्टी को फिर से जीवंत करने में मदद करता है।

2. **कीट और रोग नियंत्रण:** फसलचक्र में दलहन को शामिल करने से कीटों और रोगजनकों के जीवन चक्र को बाधित करने में मदद मिलती है, जिससे कीटों और बीमारियों का प्रकोप कम होता है।

3. **जल उपयोग दक्षता:** कई दलहन फसलें कम पानी की आवश्यकता वाली होती हैं, जो उन्हें सूखे प्रवण क्षेत्रों या पानी की कमी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त बनाती हैं।

4. **किसानों की आय में स्थिरता:** विभिन्न प्रकार की फसलें उगाना किसानों को बाजार की कीमतों में उतार-चढ़ाव या एक विशेष फसल की विफलता के जोखिम को कम करने में मदद करता है।

5. **जैवविविधता का संरक्षण:** फसल विविधीकरण कृषि जैवविविधता को बनाए रखने में योगदान देता है।

तिलहन फसलों का पोषण संबंधी महत्व:

तिलहन फसलें, जिनमें सरसों, मूंगफली, सोयाबीन, सूरजमुखी, तिल, अलसी, तोरिया, अरंडी और नाइजर शामिल हैं, मुख्य रूप से वनस्पति तेलों के लिए उगाई जाती हैं, जो ऊर्जा और आवश्यक वसा अम्ल प्रदान करते हैं। हालाँकि, वे प्रोटीन, फाइबर और कई सूक्ष्म पोषक तत्वों के भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

1. **आवश्यक वसा अम्ल (Essential Fatty Acids):** तिलहनों से प्राप्त तेल आवश्यक पॉलीअनसैचुरेटेड वसा अम्ल (PUFAs) जैसे ओमेगा-3 और ओमेगा-6 फैटी एसिड से भरपूर होते हैं, जो शरीर द्वारा संश्लेषित नहीं किए जा सकते और आहार से प्राप्त किए जाने चाहिए।

- **ओमेगा-3 फैटी एसिड:** अलसी और सरसों के तेल में अल्फा-लिनोलेनिक एसिड के रूप में ओमेगा-3 फैटी एसिड पाया जाता है, जो हृदय स्वास्थ्य, मस्तिष्क के कार्य और सूजन को कम करने के लिए महत्वपूर्ण है।

- **ओमेगा-6 फैटी एसिड:** मूंगफली, सूरजमुखी और सोयाबीन के तेल में लिनोलिक एसिड के रूप में ओमेगा-6 फैटी एसिड प्रचुर मात्रा में होता है। ये कोशिका झिल्ली के निर्माण और हार्मोन उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण हैं।
- 1. **ऊर्जा का सघन स्रोत:** तेल और वसा ऊर्जा के सघन स्रोत होते हैं, जो विशेष रूप से उन आबादी के लिए महत्वपूर्ण हैं जहाँ कैलोरी की कमी एक मुद्दा है। प्रतिग्राम 9 कैलोरी के साथ, ये भोजन की ऊर्जा घनत्व को बढ़ाते हैं।
- 2. **वसा में घुलनशील विटामिन (Fat-soluble Vitamins):** तिलहन तेल वसा में घुलनशील विटामिन जैसे विटामिनई और कुछ हद तक विटामिनके के अच्छे स्रोत होते हैं।
- **विटामिन-ई:** यह एक शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट है जो कोशिकाओं को ऑक्सीडेटिव क्षति से बचाता है और प्रतिरक्षा कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- **विटामिन-के:** यह रक्त के थक्के जमने और हड्डियों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।
- 4. **प्रोटीन और फाइबर (खली के रूप में) :** तेल निकालने के बाद बची हुई खली प्रोटीन और फाइबर से भरपूर होती है। सोयाबीन खली, मूंगफली खली और सरसों खली का उपयोग पशुआहार के रूप में किया जाता है, जिससे अप्रत्यक्ष रूप से दूध और मांस जैसे पशु उत्पादों के माध्यम से मानव पोषण में योगदान होता है। इसके अलावा, कुछ तिलहनों, जैसे सोयाबीन, को सीधे भोजन के रूप में भी उपयोग किया जाता है, जहाँ वे प्रोटीन और फाइबर दोनों प्रदान करते हैं।
- 5. **सूक्ष्म पोषक तत्व:** तिलहन जैसे तिल, सूरजमुखी के बीज, और अलसी के बीज कैल्शियम, मैग्नीशियम, जिंक, सेलेनियम, आयरन और फोलेट जैसे खनिजों के अच्छे स्रोत होते हैं। उदाहरण के लिए, तिल कैल्शियम का एक उत्कृष्ट स्रोत है, जो हड्डियों के स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय पोषण सुरक्षा में योगदान के उदाहरण:

भारत में दलहन और तिलहन फसलों की भूमिका को विभिन्न संदर्भों में देखा जा सकता है:

- **सरकारी कार्यक्रम:** प्रधानमंत्री पोषण शक्ति निर्माण योजना (जिसे पहले मध्याह्न भोजन योजना के नाम से जाना जाता था) में दालों का नियमित रूप से उपयोग किया जाता है ताकि स्कूली बच्चों को आवश्यक प्रोटीन और सूक्ष्म पोषक तत्व मिल सकें। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से भी कुछ राज्यों में दालों का वितरण किया जाता है।
- **किसानों की आय और स्थिरता:** दलहन और तिलहन फसलें अक्सर कम पानी की आवश्यकता वाली होती हैं और मिट्टी की उर्वरता में सुधार करती हैं (दलहन नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से)। ये किसानों को आर्थिक स्थिरता प्रदान करती हैं, जिससे उन्हें पोषण युक्त भोजन खरीदने की क्षमता मिलती है।

- **खाद्य प्रसंस्करण उद्योग:** सोयाबीन से सोया दूध, टोफू, सोयाचंक्स जैसे उत्पाद और विभिन्न तिलहन से तेल, मार्जरीन, और स्नैक्स तैयार किए जाते हैं, जो शहरी और ग्रामीण दोनों आबादी के लिए उपलब्ध हैं।
- **पारंपरिक भारतीय व्यंजन:** भारतीय भोजन में दालें दैनिक आहार का एक अनिवार्य हिस्सा हैं, चाहे वह दाल-चावल हो, सांभर, रसम या विभिन्न प्रकार की मिठाइयाँ और स्नैक्स। तिलहन से प्राप्त तेलों का उपयोग खाना पकाने के लिए बड़े पैमाने पर किया जाता है।
- **पोषण संबंधी विविधता:** इन फसलों की खेती और खपत को बढ़ावा देने से आहार में विविधता आती है, जिससे पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने में मदद मिलती है।

चुनौतियाँ और आगे का मार्ग :

दलहन और तिलहन फसलों की पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका होने के बावजूद, कई चुनौतियाँ भी जिन्हें संबोधित करने की आवश्यकता है:

1. **उत्पादकता में वृद्धि :** भारत में दलहन और तिलहन की औसत उपज अभी भी वैश्विक औसत से कम है। उच्च उपज देनेवाली किस्मों का विकास और उनका प्रसार, बेहतर कृषि पद्धतियाँ, और सिंचाई सुविधाओं का विस्तार आवश्यक है।
2. **कटाई के बाद का नुकसान:** कटाई, भंडारण और प्रसंस्करण के दौरान होने वाले नुकसान को कम करना महत्वपूर्ण है ताकि उपलब्ध उत्पादन का अधिकतम उपयोग हो सके।
3. **बाजार संपर्क और मूल्य श्रृंखला:** किसानों को उनकी उपज का उचित मूल्य सुनिश्चित करने के लिए मजबूत बाजार संपर्क और कुशल मूल्य श्रृंखला की आवश्यकता है।
4. **जलवायु परिवर्तन:** जलवायु परिवर्तन फसल उत्पादन को प्रभावित कर रहा है। सूखा-प्रतिरोधी और कीट-प्रतिरोधी किस्मों का विकास और जलवायु-स्मार्ट कृषि प्रथाओं को अपनाना आवश्यक है।
5. **उपभोक्ता जागरूकता:** शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में दलहन और तिलहन के पोषण संबंधी लाभों के बारे में जागरूकता बढ़ाना, और उनके आहार में शामिल करने को प्रोत्साहित करना महत्वपूर्ण है।
6. **अनुसंधान और विकास:** नई किस्मों के विकास के लिए निरंतर अनुसंधान और विकास की आवश्यकता है जो उच्च पोषण मूल्य और बेहतर उपज प्रदान कर सकें।
7. **सरकारी नीतियाँ :** सरकार को दलहन और तिलहन उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए नीतियों को जारी रखना चाहिए, जिसमें न्यूनतम समर्थन मूल्य और अन्य प्रोत्साहन शामिल हैं।

निष्कर्ष :

राष्ट्रीय पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने में दलहन और तिलहन फसलें एक बहुआयामी और अपरिहार्य भूमिका निभाती हैं। वे न केवल प्रोटीन, आवश्यक वसा अम्ल और सूक्ष्म पोषक तत्वों के सस्ते और सुलभ

स्रोत हैं, बल्कि वे मिट्टी के स्वास्थ्य को भी बनाए रखती हैं और किसानों की आजीविका में सुधार करती हैं। भारत जैसे देश में जहाँ कुपोषण अभी भी एक बड़ी चुनौती है, इन फसलों की खेती और खपत को बढ़ावा देना एक स्थायी समाधान है।

निरंतर अनुसंधान, नीतिगत समर्थन, बेहतर कृषि पद्धतियाँ और उपभोक्ता जागरूकता के माध्यम से, हम दलहन और तिलहन की पूरी क्षमता का उपयोग कर सकते हैं ताकि हर भारतीय को पर्याप्त और पौष्टिक भोजन मिल सके। यह समय की मांग है कि हम इन पोषण के पावर हाउस फसलों को वह महत्व दें सके जिसके वे हकदार हैं, और उन्हें राष्ट्रीय पोषण सुरक्षा रणनीति के केन्द्र में रखें। दालों से मिलने वाला प्रोटीन और तिलहन से मिलने वाले स्वस्थ वसा, सूक्ष्म पोषक तत्वों के साथ मिलकर, देश के पोषण परिदृश्य को बदल सकते हैं और एक स्वस्थ व मजबूत भारत का निर्माण कर सकते हैं।

भारत में दलहनों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की दिशा में रबी दलहनी फसलों की उत्पादकता बढ़ाने की रणनीतियाँ

डॉ. चाँदिनी, श्वेता कुमारी एवं डॉ. रणदीप कुमार

दलहन प्रोटीन, विटामिन और खनिजों के प्रमुख स्रोत हैं तथा इन्हें लोकप्रिय रूप से “गरीबों का मांस” और “अमीरों की सब्जी” कहा जाता है। ये देश की पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। औसत भारतीय परिवार के दैनिक भोजन में दाल का होना आवश्यक माना जाता है। हालाँकि, भारत में दलहनों की प्रति व्यक्ति शुद्ध उपलब्धता वर्ष 1971 में 51.1 ग्राम/दिन से घटकर वर्ष 2013 में 41.9 ग्राम/दिन रह गई, जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन की अनुशंसा 80 ग्राम/दिन है। अधिकांश लोगों के लिए दाल ही प्रोटीन का एकमात्र प्रमुख स्रोत है।

भारत विश्व में दलहनों का सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता है। विश्व के कुल दलहन क्षेत्रफल में भारत की हिस्सेदारी लगभग 29 प्रतिशत तथा कुल उत्पादन में लगभग 19 प्रतिशत है। विभिन्न दलहनी फसलों में चना प्रमुख है, जिसका कुल दलहन उत्पादन में 40 प्रतिशत से अधिक योगदान है। इसके बाद अरहर (18–20%), मूंग (11%), उड़द (10–12%), मसूर (8–9%) तथा अन्य दलहन (20%) का स्थान है (IIPR Vision 2030)।

दलहनों की कमी से कुपोषण की गंभीर समस्या उत्पन्न होती है। इसलिए देश की आवश्यकता को पूरा करने के लिए दलहनों के उत्पादन में वृद्धि करना अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए उत्पादन तकनीकों में उचित सुधार एवं उनका प्रभावी उपयोग करके दलहनों की उत्पादकता और उत्पादन बढ़ाने की तत्काल आवश्यकता है।

भारत में दलहनी फसलों की उत्पादकता में सुधार के उपाय

1. एकीकृत फसल प्रबंधन (ICM)

एकीकृत फसल प्रबंधन के तहत उर्वरक एवं पोषक तत्वों की उचित मात्रा, बीज दर, बीज उपचार, उपयुक्त बुवाई विधि, खरपतवार नियंत्रण, सिंचाई प्रबंधन और सूक्ष्म सिंचाई अपनाने से दलहनी फसलों की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। 20–25 किग्रा/हेक्टेयर सल्फर के प्रयोग से उपज में लगभग 15–20% वृद्धि हो सकती है। सीमित मात्रा में पूरक सिंचाई, विशेषकर वर्षा आधारित फसलों की महत्वपूर्ण अवस्थाओं में, उपज एवं जल उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार करती है।

2. एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM)

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के अंतर्गत दलहनी फसलों में संतुलित पोषक तत्वों का प्रयोग, जैविक खाद, फसल अवशेष तथा सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे बोरॉन, जिंक और मोलिब्डेनम का उचित उपयोग आवश्यक है। फॉस्फेट घुलनशील जीवाणु (PSB) फॉस्फोरस के अवशोषण और फसल की उपज बढ़ाने में सहायक होते हैं। रासायनिक उर्वरकों के साथ जैविक एवं जैविक-नाइट्रोजन स्थिरीकरण स्रोतों का संतुलित

उपयोग N और P की उपयोग दक्षता बढ़ाता है। इसके अलावा, बुवाई से पहले बीज उपचार करने से नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वृद्धि होती है।

3. एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन (IPDM)

एकीकृत कीट एवं रोग प्रबंधन के तहत रोग एवं कीट नियंत्रण के लिए प्रतिरोधी किस्मों, जैव-कीटनाशकों और उपयुक्त फफूंदनाशकों का प्रयोग किया जाना चाहिए। बुवाई से पहले बीज उपचार तथा मिट्टी में *Trichoderma* का प्रयोग फ्यूजेरियम विल्ट और कॉलर रॉट जैसे रोगों को नियंत्रित करने में प्रभावी है। चना और अरहर में फेरोमोन ट्रैप, बर्ड पर्च तथा नीम तेल के प्रयोग से *Helicoverpa* कीट का प्रबंधन किया जा सकता है। इसके अलावा, फसल-विशिष्ट कीटनाशकों का आवश्यकता अनुसार उचित मात्रा में छिड़काव करके कीटों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है।

4. समेकित खरपतवार प्रबंधन (IWM)

समेकित खरपतवार प्रबंधन में खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के लिए दो या अधिक विधियों, जैसे रोकथाम, यांत्रिक, सांस्कृतिक तथा रासायनिक विधियों का संयुक्त प्रयोग किया जाता है। स्टेल-सीड बेड, बुवाई-पूर्व और अंकुरण-पूर्व शाकनाशी प्रारंभिक अवस्था में प्रभावी नियंत्रण देते हैं। दलहनी फसलों में 20-30 दिनों बाद आवश्यकता पड़ने पर निराई या पोस्ट-इमर्जेन्स शाकनाशी का प्रयोग किया जाता है। इमाजेथापायर और क्विजालोफॉप-पी-एथिल कुछ फसलों में विशिष्ट खरपतवारों के नियंत्रण के लिए उपयोग किए जाते हैं।

5. कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी

दलहनों के भंडारण में भंडारण कीटों के कारण दानों को काफी नुकसान होता है, जबकि दाल के रूप में नुकसान अपेक्षाकृत कम होता है। मूल्य संवर्धन से किसानों को अधिक आय प्राप्त हो सकती है। IIPR, कानपुर ने कम क्षमता वाली "IIPR दाल मिल" विकसित की है तथा CFTRI और CIAE द्वारा भी दाल मिलें विकसित की गई हैं। फिर भी, दाल मिलिंग तकनीक में सुधार के लिए और प्रयासों की आवश्यकता है।

6. दलहनी फसलों की ओर विविधीकरण

मांग और आपूर्ति के बीच बढ़ते अंतर को दलहनी फसलों की ओर फसल विविधीकरण के माध्यम से दलहनों के अंतर्गत क्षेत्रफल बढ़ाकर काफी हद तक कम किया जा सकता है। चूंकि देशभर में लगभग एक दर्जन दलहनी फसलों की व्यावसायिक रूप से खेती की जाती है और प्रत्येक फसल की अपनी विशिष्ट अनुकूलन क्षमता एवं उपयुक्त क्षेत्र हैं, इसलिए कृषि-पारिस्थितिक एवं सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए एक अलग-अलग और क्षेत्र-विशिष्ट दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। लगभग 30 से 50 लाख हेक्टेयर के विशाल धान-गेहूँ क्षेत्र तथा अन्य परती भूमि में, मिट्टी में नमी और जल की उपलब्धता के आधार पर, कम अवधि वाली दलहनी फसलों जैसे मूंग, उड़द, लोबिया या कुल्थी की खेती को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। साथ ही, संरक्षण कृषि तकनीकों को अपनाकर नाइट्रोजन एवं कार्बन के संतुलन में सुधार, किसानों की आय में वृद्धि तथा सबसे महत्वपूर्ण रूप से प्रोटीन पोषण को

बढ़ावा दिया जा सकता है। कम अवधि (120–125 दिन) वाली अरहर की उन्नत किस्में, जो अब उपलब्ध हैं, उन्हें अरहर–गेहूँ फसल प्रणाली में सफलतापूर्वक शामिल किया जा सकता है। इससे प्रचलित धान–गेहूँ फसल प्रणाली के समान आर्थिक लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, इस फसल प्रणाली से मृदा उर्वरता में सुधार, जल की खपत में कमी तथा मानव पोषण में वृद्धि जैसे महत्वपूर्ण लाभ भी प्राप्त होते हैं।

7. उपज अंतर को कम करना और कुल कारक उत्पादकता में वृद्धि करना

सभी दलहनी फसलों में प्राप्त की जा सकने वाली उपज और वास्तविक उपज के बीच काफी अधिक अंतर पाया जाता है। इसके अलावा, कुल कारक उत्पादकता (TFP) न केवल कम रही है, बल्कि इसमें वृद्धि की गति भी अत्यंत धीमी रही है। इस उपज अंतर के लिए प्रसार व्यवस्था की समस्या, किसानों द्वारा नई तकनीकों को अपनाने में कमी, अथवा स्वयं तकनीक में मौजूद कमियों को जिम्मेदार माना जा सकता है। इस उपज अंतर को कम करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाने आवश्यक हैं।

7.1. कम उपज एवं कम उत्पादकता वाले क्षेत्रों की पहचान एवं मानचित्रण किया जाए तथा उपज अंतर और कम कारक उत्पादकता के स्थान–विशिष्ट कारणों का पता लगाया जाए। साथ ही, पुनर्गठित राज्य भूमि उपयोग बोर्डों के माध्यम से क्षेत्र की उपज एवं आय क्षमता को साकार करने के लिए भूमि एवं जल के उपयोग से संबंधित विशिष्ट निर्णयों को बढ़ावा दिया जाए।

7.2 किस्मों एवं बीज प्रतिस्थापन दर (SRR) में वृद्धि करना : 10 वर्ष से अधिक पुरानी किस्मों को नई एवं उन्नत किस्मों से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए तथा बीज प्रतिस्थापन दर (SRR) को 30 प्रतिशत से अधिक बढ़ाया जाना चाहिए।

7.3 दलहनी फसलों में यंत्रीकरण को बढ़ावा देना तथा कृषि यंत्रीकरण और एकीकृत कीट प्रबंधन (IPM) के माध्यम से खेती की लागत को कम करना चाहिए। कृषि उपकरणों के कस्टम हायरिंग (किराये पर उपलब्ध कराने) को प्रोत्साहित करके तथा इन उपकरणों की सामुदायिक स्तर पर उपलब्धता सुनिश्चित करके कृषि यंत्रीकरण को बढ़ावा देना चाहिए।

निष्कर्ष

भारत दलहन का सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता है, फिर भी देश में दलहन की मांग के अनुसार उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता है। इसके लिए कृषि प्रसार सेवाओं को मजबूत, किसानों को मृदा पोषक तत्वों की कमी और उन्नत उत्पादन तकनीकों की जानकारी देना आवश्यक है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना और प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना जैसी योजनाएँ दलहन उत्पादन को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

बिहार में बदलती जलवायु परिस्थितियों के संदर्भ में मक्का आधारित अंतःफसली खेती

¹अलीशा कुमारी, ²ग्यायत्री कुमारी, ³पंकज कुमार, ⁴श्रुति सुमन

^{1,2,3,4}सहायक प्राध्यापक—सह-कनीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान, बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर

परिचय :

बिहार की कृषि मुख्यतः मानसून सिंचाई की उपलब्धता मिट्टी की नमी तथा मौसम की समयबद्धता पर निर्भर करती है। राज्य के विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों में बाढ़ जलभराव सूखा जैसी अल्पकालिक नमी समस्याएँ असामान्य वर्षा तापमान में उतार-चढ़ाव तथा फसल बुवाई में देरी जैसी परिस्थितियाँ कृषि उत्पादन को प्रभावित कर सकती हैं। विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम की अनिश्चितता बढ़ने से एकल फसल आधारित कृषि प्रणाली में जोखिम बढ़ सकता है। बिहार में हाल के जलवायु-लचीली कृषि कार्यक्रमों में भी फसल विविधीकरण मृदा स्वास्थ्य जल संरक्षण समय पर फसल स्थापना और संसाधन-कुशल कृषि पद्धतियों को महत्वपूर्ण माना गया है। ऐसी परिस्थितियों में मक्का आधारित अंतःफसली प्रणाली किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण विकल्प हो सकती है। मक्का एक बहुउपयोगी फसल है जिसका उपयोग खाद्यान्न पशु आहार पोल्ट्री फीड औद्योगिक उत्पाद तथा जैव-ईंधन आदि के लिए किया जाता है। बिहार में रबी मक्का विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि सिंचित परिस्थितियों में इसकी उत्पादकता अच्छी प्राप्त की जा सकती है। पुसा, बिहार में किए गए पुराने शोध में भी शीतकालीन मक्का आधारित अंतःफसली प्रणालियों में सिंचाई स्तर, उत्पादन, जल उपयोग दक्षता और आर्थिक प्रतिफल का अध्ययन किया गया था। मक्का की ऊँची एवं सीधी वृद्धि के कारण इसकी पंक्तियों के बीच उपलब्ध स्थान का उपयोग कम अवधि वाली दलहनी, तिलहनी सब्जी अथवा कंद फसलों के लिए किया जा सकता है। उदाहरण के लिए मक्का + मटर, मक्का + आलू मक्का + सरसों मक्का + मसूर मक्का + चना तथा मक्का + सब्जी फसलें क्षेत्र और मौसम के अनुसार उपयोगी संयोजन हो सकते हैं। हालांकि, प्रत्येक फसल संयोजन के लिए उपयुक्त पंक्ति अनुपात, पौध संख्या, बुवाई समय और पोषक तत्व प्रबंधन अलग-अलग होगा।

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में अंतःफसली खेती का सबसे महत्वपूर्ण लाभ जोखिम का विभाजन है। यदि किसी एक फसल पर अत्यधिक तापमान, असामान्य वर्षा, सूखा या बाजार मूल्य में गिरावट का प्रभाव पड़ता है, तो दूसरी फसल से किसान को कुछ आर्थिक सुरक्षा मिल सकती है। विविधीकृत कृषि प्रणालियों को बिहार में जलवायु-लचीली कृषि की रणनीति के रूप में भी बढ़ावा दिया जा रहा है।

बिहार में बदलती जलवायु और मक्का उत्पादन :

मक्का की उत्पादकता तापमान, जल उपलब्धता, सौर विकिरण और फसल की स्थापना के समय से प्रभावित होती है। तापमान में वृद्धि तथा जल उपलब्धता में अनिश्चितता जैसी परिस्थितियाँ मक्का की वृद्धि और दाना भरने को प्रभावित कर सकती हैं। जलवायु-अध्ययनों में भी भविष्य के तापमान परिवर्तन

के कारण मक्का की उत्पादकता पर संभावित प्रतिकूल प्रभाव तथा अनुकूलन उपायों की आवश्यकता बताई गई है। बिहार में स्थिति और जटिल हो जाती है क्योंकि राज्य में बाढ़ एवं जलभराव प्रभावित क्षेत्र भी हैं और कुछ क्षेत्रों में वर्षा के बीच लंबे शुष्क अंतराल भी हो सकते हैं। इसलिए एक ऐसी कृषि प्रणाली की आवश्यकता है जो उपलब्ध संसाधनों का कुशल उपयोग करने के साथ मौसमीय जोखिम को कम करे।

अंतःफसली खेती का महत्व :

अंतःफसली खेती में दो या अधिक फसलों को एक ही खेत में निश्चित पंक्ति व्यवस्था के अनुसार उगाया जाता है।

प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग

- **भूमि और सूर्य प्रकाश का बेहतर उपयोग :** जब मक्का जैसी ऊँची बढ़ने वाली फसल के साथ कम ऊँचाई वाली फसलें उगाई जाती हैं तो खेत की खाली पड़ी जमीन का पूरा इस्तेमाल होता है। अलग-अलग ऊँचाई की फसलें होने से सूर्य की रोशनी का अधिकतम अवशोषण होता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण, की दर बढ़ती है।

- **पानी और पोषक तत्वों का स्तर-वार उपयोग :** मक्का की जड़ें गहरी होती हैं, जबकि इसके साथ उगाई जाने वाली छोटी फसलों की जड़ें उथली होती हैं। इस कारण दोनों फसलें मिट्टी की अलग-अलग परतों, से पानी और पोषक तत्व खींचती हैं। इससे फसलों के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा, नहीं होती और मिट्टी की उर्वरता का संतुलित उपयोग होता है।

- **विविध कृषि उत्पाद और अधिक आय :** इस पद्धति से किसान को एक ही मौसम में मक्का, के साथ-साथ दालें या चारा भी मिल जाता है। प्रति इकाई क्षेत्र से मिलने वाली कुल उपज और कुल खेत आय में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

- **बाजार और मौसम के जोखिम से सुरक्षा :** यदि किसी कारणवश जैसे सूखा या कीटों का हमला मक्का की फसल खराब हो जाती है, तो दूसरी फसल किसान को पूरी तरह बर्बाद होने से बचा लेती है। इसके अलावा, यदि बाजार में एक फसल के दाम गिर जाएं, तो दूसरी फसल से लागत की भरपाई हो जाती है।

- **जैव विविधता और कीट नियंत्रण :** एक से अधिक फसलें होने से खेत का पारिस्थितिकी तंत्र, मजबूत होता है और मित्र कीटों को बढ़ावा मिलता है। इससे हानिकारक कीटों और बीमारियों का फैलाव प्राकृतिक रूप से रुक जाता है।

- **जलवायु परिवर्तन :** जलवायु परिवर्तन के इस दौर में अनियमित बारिश या अत्यधिक तापमान से फसलें जल्दी प्रभावित होती हैं। अंतःफसली प्रणाली में फसलों की विविधता खेत को विषम मौसम को सहने की बेहतर क्षमता प्रदान करती है।

बिहार के लिए संभावित मक्का आधारित अंतःफसली प्रणालियाँ :

- **मक्का + मटर** : रबी मौसम में यह एक उपयोगी विकल्प हो सकता है। मटर से हरी फलियां प्राप्त होती हैं तथा यह दलहनी फसल होने के कारण फसल प्रणाली में जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण में योगदान देती है।

- **मक्का + आलू** : आलू की भूमिगत कंद वृद्धि तथा मक्का की ऊर्ध्वाधर वृद्धि के कारण उचित पंक्ति व्यवस्था में संसाधनों के पूरक उपयोग की संभावना रहती है।

- **मक्का + सरसों** : जहां सरसों की खेती अनुकूल हो, वहां उपयुक्त पंक्ति व्यवस्था के साथ इसे मक्का के साथ जोड़ा जा सकता है।

- **मक्का + मसूर** : मसूर कम ऊंचाई वाली दलहनी फसल होने के कारण मक्का के साथ संसाधन उपयोग में पूरकता प्रदान कर सकती है।

- **मक्का + चना** : विशेष रूप से रबी आधारित प्रणाली में स्थानीय जलवायु और मिट्टी की परिस्थितियों के अनुसार इस संयोजन का अध्ययन किया जा सकता है।

जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध अंतःफसल की भूमिका :

- **जोखिम का विभाजन** : एकल फसल में पूरी आय एक ही फसल पर निर्भर रहती है। अंतःफसल में दो फसलों से उत्पादन प्राप्त होने के कारण जोखिम विभाजित होता है।

- **जल उपयोग दक्षता** : यदि दोनों फसलों की जड़ प्रणाली और जल मांग अलग-अलग हो, तो उपलब्ध जल का अधिक प्रभावी उपयोग संभव हो सकता है।

- **भूमि उपयोग दक्षता** : अंतःफसली खेती का मूल्यांकन भूमि उपयोग दक्षता के द्वारा किया जा सकता है। यदि 1 से अधिक है तो सामान्यतः यह संकेत देता है कि अंतःफसली प्रणाली ने भूमि का एकल फसल की तुलना में अधिक प्रभावी उपयोग किया।

- **पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग** : मक्का की उच्च नाइट्रोजन आवश्यकता वाली प्रकृति को देखते हुए इसके साथ दलहनी फसल को शामिल करना पोषक तत्व प्रबंधन की समग्र रणनीति में उपयोगी हो सकता है।

- **बिहार में वर्तमान जलवायु** : कृषि कार्यक्रमों में भी दलहनी फसलों, जैव उर्वरकों, हरी खाद और संतुलित पोषण को मृदा स्वास्थ्य तथा कृषि लचीलापन बढ़ाने के उपायों के रूप में प्रोत्साहित किया जा रहा है।

- **रबी मक्का आधारित अंतःफसल बिहार के लिए विशेष अवसर** : बिहार में रबी मक्का की खेती सिंचाई उपलब्धता वाले क्षेत्रों में विशेष महत्व रखती है। रबी मौसम में मानसूनी वर्षा की निर्भरता कम होने के कारण किसान सिंचाई द्वारा फसल की जल आवश्यकता पूरी कर सकते हैं। लेकिन सिंचाई जल भी सीमित संसाधन है। इसलिए मक्का के साथ ऐसी फसल चुनना उपयोगी होगा जिसकी जल मांग वृद्धि अवधि और जड़ क्षेत्र मक्का से पूरी तरह समान न हो। मक्का, आलू, मटर जैसी बहुफसली प्रणाली को

भी अनुसंधान के स्तर पर देखा जा सकता है, हालांकि व्यावहारिक खेती में अत्यधिक फसल घनत्व से प्रतिस्पर्धा बढ़ सकती है। इसलिए वैज्ञानिक रूप से निर्धारित पंक्ति अनुपात अत्यंत आवश्यक है।

- **संरक्षण कृषि और मक्का अंतःफसल** : बिहार में जलवायु परिवर्तन के कारण अंतःफसल का महत्व बढ़ रहा है। इसमें न्यूनतम मृदा छेड़छाड़, फसल अवशेषों का संरक्षण तथा फसल विविधीकरण जैसे सिद्धांत महत्वपूर्ण हैं। फसल अवशेषों को जलाने के बजाय उनका पुनर्चक्रण करने से मृदा में जैविक पदार्थ, नमी धारण क्षमता और जैविक गतिविधि में सुधार किया जा सकता है। बिहार में हाल के कार्यक्रमों में भी अवशेष पुनर्चक्रण दाना, आलू, हरी खाद, संरक्षण कृषि और मृदा स्वास्थ्य पर जोर दिया गया है।

- **आर्थिक दृष्टि से महत्व** : अंतःफसल प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ किसान की कुल आर्थिक उत्पादकता में संभावित वृद्धि है। मक्का का अनाज, चारा, मटर, हरी फलियां और कंद इस प्रकार किसान को एक ही खेत से विभिन्न समय पर विभिन्न उत्पाद प्राप्त हो सकते हैं। यदि मक्का का बाजार मूल्य कम हो तो मटर या आलू से आय मिल सकती है। यही कारण है कि फसल विविधीकरण जलवायु जोखिम के साथ-साथ बाजार जोखिम को भी कम करने में सहायक हो सकता है।

निष्कर्ष :

बिहार की बदलती और अनिश्चित जलवायु परिस्थितियों के आलोक में मक्का आधारित अंतःफसली कृषि प्रणाली महज उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने की एक तकनीक नहीं है, बल्कि यह राज्य के कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को अधिक लचीला, टिकाऊ और जोखिम-सहिष्णु बनाने की एक दूरदर्शी रणनीति है। पारंपरिक एकल-फसल पद्धति के स्थान पर मक्का के साथ रबी मौसम में मटर, आलू, मसूर, चना, राई-सरसों अथवा अन्य अनुकूल फसलों का वैज्ञानिक समावेश न केवल भूमि उपयोग दक्षता को अधिकतम करता है, बल्कि यह सीमित जल, पोषक तत्वों और सौर-ऊर्जा के इष्टतम और संतुलित दोहन में भी अत्यंत सहायक सिद्ध होता है। यह बहु-फसलीय मॉडल जहाँ एक ओर दलहनी फसलों के माध्यम से जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण को बढ़ावा देकर मृदा की उर्वरा शक्ति को पुनर्जीवित करता है, वहीं दूसरी ओर फसलों के बीच पोषक तत्वों की प्रतिस्पर्धा को कम कर प्रति इकाई क्षेत्र से उच्चतर आर्थिक लाभ सुनिश्चित करता है। विशेष रूप से बिहार के भौगोलिक संदर्भ में, जहाँ उत्तर बिहार का एक बड़ा हिस्सा बार-बार आने वाली विनाशकारी बाढ़, जलभराव और सुखाड़ से ग्रसित रहता है, तथा दक्षिण बिहार असामान्य वर्षा एवं हीटवे जैसी मौसमी अनिश्चितताओं का सामना कर रहा है, वहाँ कृषि-जोखिम प्रबंधन के लिए बहुआयामी -ष्टिकोण अनिवार्य हो गया है। इस दिशा में फसल विविधीकरण, संरक्षण कृषि, संतुलित पोषण तथा सूक्ष्म-सिंचाई जैसी संसाधन-कुशल तकनीकों का एकीकृत अंगीकरण समय की मांग है हाल के वर्षों में बिहार सरकार द्वारा संचालित जलवायु-अनुकूल कृषि कार्यक्रम तथा चौथे कृषि रोडमैप के विजन के अनुरूप, राज्य में कृषि को संकट से उबारने के लिए इन उपायों को जमीनी स्तर पर लागू किया जा रहा है। यह रणनीति न केवल फसल विविधीकरण और मृदा स्वास्थ्य में सुधार लाती है, बल्कि हरी खाद, फसल अवशेष प्रबंधन और शून्य-जुताई जैसे पारिस्थितिकी-अनुकूल अभ्यासों के माध्यम से

ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम कर कार्बन सिंक का निर्माण करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि मक्का आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली को व्यापक रूप से अपनाकर न केवल बिहार के सीमांत एवं लघु किसानों की आजीविका सुरक्षा को सुदृढ़ किया जा सकता है, बल्कि राज्य को खाद्य और पोषण सुरक्षा के क्षेत्र में एक क्लाइमेट-स्मार्ट मॉडल के रूप में भी स्थापित किया जा सकता है।

खरपतवारों के प्रबंधन में फसल चक्र एवं फसल विविधीकरण की भूमिका

¹श्वेता कुमारी, ²संजय कुमार, ³स्वराज कुमार दत्ता, ⁴चांदिनी, ⁵गायत्री कुमारी, ⁶अलीशा कुमारी एवं ⁷पंकज कुमार

²विश्वविद्यालय प्राध्यापक—सह—मुख्य वैज्ञानिक

³संबद्ध प्राध्यापक—सह—मुख्य वैज्ञानिक

^{1,4,5,6,7}सहायक प्राध्यापक—सह—कनीय वैज्ञानिक

सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर-813210

प्रस्तावना

खरपतवार फसल उत्पादन की प्रमुख समस्याओं में से एक है। ये फसलों के साथ जल, पोषक तत्व, प्रकाश, स्थान तथा अन्य संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा करता है जिसके कारण फसल की वृद्धि एवं उत्पादकता प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त, खरपतवारों के नियंत्रण में होने वाला अतिरिक्त श्रम, समय और आर्थिक व्यय खेती की लागत को बढ़ाता है। परंपरागत कृषि प्रणालियों में खरपतवार नियंत्रण के लिए खरपतवारनाशियों पर निर्भरता बढ़ी है। खरपतवारनाशी प्रभावी एवं सुविधाजनक साधन हैं, लेकिन इनके लगातार और एक ही प्रकार से उपयोग से खरपतवारनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों का विकास हो जाता है तथा पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए ऐसी रणनीतियों की आवश्यकता है जो खरपतवारों को नियंत्रित करने के साथ-साथ कृषि प्रणाली का अधिक टिकाऊ और पर्यावरण अनुकूल बनाएँ।

फसल विविधीकरण एक ऐसी महत्वपूर्ण रणनीति है, जिसके अन्तर्गत समय और स्थान के अनुसार विभिन्न फसलों को शामिल किया जाता है। इसमें फसल चक्र, अंतरफसली खेती, आवरण फसलें तथा अन्य विविधीकृत फसल व्यवस्थाएँ शामिल हैं। फसल विविधीकरण खरपतवारों को विभिन्न प्रकार के वातावरण और प्रबंधन परिस्थितियों के संपर्क में लाता है, जिससे किसी एक खरपतवार प्रजाति के अत्याधिक प्रभुत्व और अनुकूलन की संभावनाएँ कम होती हैं।

फसल विविधीकरण का अर्थ एवं महत्व :-

फसल विविधीकरण का अर्थ कृषि प्रणाली में विभिन्न फसलों एवं फसल प्रजातियों को समय या स्थान के आधार पर सम्मिलित करना है। एकल फसल प्रणाली में लंबे समय तक एक ही फसल और लगभग समान कृषि प्रबंधन अपनाया जाता है। इससे कुछ विशेष खरपतवार प्रजातियों को अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती रहती हैं और वो धीरे-धीरे उस वातावरण के अनुकूल हो जाती हैं। इसके विपरीत, विविधीकृत कृषि प्रणाली में अलग-अलग फसलों की वृद्धि अवधि, पौधों की संरचना, जड़ प्रणाली, छत्र घनत्व, पोषक तत्वों की आवश्यकता तथा प्रबंधन विधियाँ अलग होती हैं। इस कारण खरपतवारों के लिए उपलब्ध संसाधनों और अनुकूल परिस्थितियों में लगातार परिवर्तन होता रहता है।

फसल विविधीकरण केवल खरपतवार नियंत्रण तक सीमित नहीं है। इससे पोषक तत्वों का पुनर्चक्रण, जल उपयोग दक्षता, मृदा स्वास्थ्य, कीट एवं रोग प्रबंधन तथा कृषि प्रणाली की स्थिरता में भी सुधार हो सकता है। इस प्रकार फसल विविधीकरण का टिकाऊ कृषि उत्पादन का एक

महत्वपूर्ण आधार माना जा सकता है।

खरपतवार प्रबंधन की दृष्टि से फसल विविधीकरण के दो प्रमुख सिद्धांत हैं। पहला अलग-अलग फसलों एवं प्रबंधन विधियों के माध्यम से खरपतवारों को विभिन्न तनावों के संपर्क में लाना। दूसरा, फसल द्वारा प्रकाश, जल और पोषक तत्वों का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करना, ताकि खरपतवारों के लिए इन संसाधनों की उपलब्धता कम हो।

फसल चक्र की भूमिका :-

फसल चक्र का अर्थ एक ही खेत में क्रमशः विभिन्न फसलों की खेती करना है। यह फसल विविधीकरण की सबसे प्रभावी एवं व्यावहारिक विधियों में से एक है। एक ही फसल को लगातार उगाने के बजाए फसल बदलने से खरपतवार के जीवन चक्र और उनके अनुकूल वातावरण में परिवर्तन आता है।

एकल फसल प्रणाली में यदि कोई खरपतवार किसी विशेष फसल और उसके प्रबंधन के अनुरूप अनुकूलित हो जाता है, तो वह प्रत्येक मौसम में तेजी से बढ़ सकता है और बीज बना सकता है। फसल चक्र में फसल की बुवाई का समय, जुताई, सिंचाई, पोषक तत्व प्रबंधन, फसल की छत्र संरचना और खरपतवार नियंत्रण की विधियाँ बदल जाती हैं। इससे खरपतवारों पर अलग-अलग प्रकार का दबाव पड़ता है और उनके लगातार अनुकूलन की संभावना कम होती है।

फसल चक्र विशेष रूप से उन खरपतवारों के प्रबंधन में उपयोगी है जो किसी विशेष मौसम या फसल के साथ अधिक अच्छी तरह से अनुकूलित हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि एक ही मौसम में लगातार एक जैसे फसल और समान प्रबंधन अपनाया जाय, तो उस मौसम में अंकुरित होने वाले खरपतवारों को बार-बार बढ़ने और बीज बनाने का अवसर मिलता है। इसके विपरीत, फसल के समय और प्रकार में परिवर्तन करने से उनके जीवन चक्र में व्यवधान उत्पन्न होता है। इसलिए फसल चक्र का निर्धारण करते समय ऐसी फसलों का चयन करना चाहिए जिनकी बुवाई एवं कटाई का समय, पौधों की संरचना और प्रबंधन विधियाँ एक-दूसरे से पर्याप्त होती हैं।

खरपतवार बीज बैंक का प्रबंधन :-

खेत की ऊपरी मिट्टी में मौजूद खरपतवार बीजों का संग्रह खरपतवार बीज बैंक कहलाता है। यही बीज भविष्य में खरपतवारों की नई पीढ़ी का प्रमुख स्रोत होते हैं। यदि खरपतवारों को बार-बार बीज बनाने का अवसर मिलता है, तो खेत में उनका बीज बैंक बढ़ता जाता है और भविष्य में खरपतवार नियंत्रण कठिन हो जाता है।

फसल विविधीकरण बीज बैंक को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अलग-अलग फसलों के कारण खरपतवारों के अंकुरण, वृद्धि और प्रजनन के लिए परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। यदि खरपतवारों को बीज बनने से पहले नियंत्रित किया जाय तो उनकी अगली पीढ़ी का स्रोत कमजोर किया जा सकता है। इसलिए खरपतवार प्रबंधन का उद्देश्य केवल वर्तमान मौसम में दिखाई देने वाले

खरपतवारों को नियंत्रित करना नहीं होना चाहिए, बल्कि उनके बीज उत्पादन को रोकना भी होना चाहिए। फसल चक्र, समय पर निराई-गुड़ाई, उपयुक्त फसल प्रतिस्पर्धा और आवरण फसलों का प्रयोग मिलकर खरपतवार बीज बैंक को धीरे-धीरे कम कर सकते हैं।

खरपतवारनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों का प्रबंधन :-

एक ही प्रकार के खरपतवारनाशी का बार-बार प्रयोग खरपतवारों पर समान चयन दबाव डालता है। इसके परिणामस्वरूप ऐसे खरपतवार पौधे बच सकते हैं जो उस खरपतवारनाशी के प्रति कम संवेदनशील होते हैं। लगातार इसी प्रक्रिया के कारण खरपतवारनाशी-प्रतिरोधी खरपतवारों की समस्या विकसित हो जाती है।

फसल चक्र इस समस्या को कम करने की प्रभावी रणनीति है। अलग-अलग फसलों के साथ बुवाई समय, जुताई, सिंचाई, पोषक तत्व प्रबंधन और खरपतवार नियंत्रण की विधियों में परिवर्तन किया जा सकता है। इससे खरपतवारों पर एक ही प्रकार का चयन दबाव लगातार नहीं रहता। इसलिए खरपतवारनाशी-प्रतिरोध के प्रबंधन में केवल अधिक मात्रा में खरपतवारनाशी का प्रयोग करने के बजाय फसल चक्र, यांत्रिक नियंत्रण, उचित फसल प्रतिस्पर्धा और अन्य गैर-रासायनिक विधियों को शामिल करना अधिक टिकाऊ दृष्टिकोण है।

अंतरफसली खेती द्वारा खरपतवार प्रबंधन

अंतरफसली खेती में दो या दो से अधिक फसलों को एक ही खेत में एक साथ उगाया जाता है। यह भी फसल विविधीकरण का एक महत्वपूर्ण तरीका है। अंतरफसली खेती में फसलें उपलब्ध संसाधनों का अलग-अलग तरीके से उपयोग करती हैं। यदि उपयुक्त फसलों का चयन किया जाय, तो खेत में उपलब्ध प्रकाश, जल, स्थान और पोषक तत्वों का अधिक प्रभावी उपयोग होता है तथा खरपतवार के लिए संसाधनों की उपलब्धता कम हो सकती है।

अंतरफसली खेती की प्रमुख विधियों में मिश्रित अंतरफसली खेती, पंक्ति अंतरफसली खेती तथा रिले अंतरफसली खेती शामिल हैं। फसलों की पंक्ति व्यवस्था, पौधों की संख्या और फसलों का संयोजन खरपतवार नियंत्रण की प्रभावशीलता को प्रभावित करता है। अनाज फसल के साथ दलहनी फसल को शामिल करना एक उपयोगी रणनीति हो सकती है। दानों फसलों की जड़ प्रणाली, पौधों की संरचना और संसाधन उपयोग की क्षमता अलग होने के कारण खेत में संसाधनों का बेहतर विभाजन हो सकता है। इससे फसल की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ती है और खरपतवारों की वृद्धि दब सकती है।

अंतरफसली खेती में पौधों को घना एवं शीघ्र विकसित होने वाला छत्र भी खरपतवार नियंत्रण में सहायक होता है। जब फसल की पत्तियाँ खेत की सतह को जल्दी ढक लेती हैं, तो खरपतवारों तक पहुँचने वाला प्रकाश कम हो जाता है। इससे खरपतवारों का अंकुरण एवं वृद्धि प्रभावित हो सकती है।

एलीलोपैथी की भूमिका :-

कुछ फसलें ऐसे रासायनिक पदार्थ छोड़ती हैं जो आसपास उगने वाले पौधों के अंकुरण या वृद्धि को प्रभावित कर सकते हैं। इस घटना को एलीलोपैथी कहा जाता है। फसल विविधीकरण एवं अंतरफसली खेती में एलीलोपैथी

खरपतवार नियंत्रण का एक जैविक आधार प्रदान कर सकती है। कुछ फसलों, विशेष रूप से ज्वार तथा अन्य फसलों में खरपतवार दमन से संबंधित एलीलोपैथिक प्रभावों का अध्ययन किया गया है। अंतरफसली खेती में ऐसी फसलों का समावेश खरपतवारों की वृद्धि को इबाने में सहायक हो सकता है। हांलाकि, एलीलोपैथी को अकेले खरपतवार नियंत्रण की पूर्ण विधि नहीं माना जाना चाहिए। इससे अन्य सांस्कृतिक, यांत्रिक और रासायनिक उपायों के साथ जोड़कर अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

आवरण फसलों की भूमिका :-

आवरण फसलें मुख्य फसलों के बीच या मुख्य फसल के उत्पादन चक्र के बाहर उगाई जाने वाली फसलें हैं। इनका उद्देश्य केवल उत्पादन करना नहीं, बल्कि मृदा को ढकना, मृदा अपरदन कम करना, मृदा स्वास्थ्य सुधारना और खरपतवारों को दबाना भी होता है। आवरण फसलें खरपतवारों के साथ प्रकाश, जल, स्थान और पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करती हैं। जब आवरण फसल अच्छी तरह से स्थापित हो जाती है, तो वह मिट्टी की सतह को ढक लेती है और खरपतवारों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ कम हो जाती हैं। आवरण फसल को समाप्त करने के बाद बचा हुआ अवशेष मिट्टी की सतह पर मल्व का कार्य करता है। यह खरपतवार बीजों के अंकुरण, उद्भव और स्थापना को रोकने में सहायता करता है।

आवरण फसल का चयन स्थानीय जलवायु, मिट्टी, उपलब्ध नमी, मुख्य फसल और किसान के उद्देश्य के अनुसार किया जाना चाहिए। अनाज वर्ग, दलहन, तिलहन तथा अन्य प्रतिस्पर्धा फसलों को आवरण फसल के रूप में उपयोग किया जा सकता है। आवरण फसल की सफलता उसके शीघ्र अंकुरण, पर्याप्त जैवभार उत्पादन, उचित स्थापना और समय पर प्रबंधन पर निर्भर करती है। इसकी समाप्ति का समय भी महत्वपूर्ण है। यदि आवरण फसल को पर्याप्त समय तक बढ़ने दिया जाय और उचित मात्रा में जैवभार बने, तो खरपतवार दमन अधिक प्रभावी हो सकता है।

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में फसल विविधीकरण :-

जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान, वर्षा और मौसम की अवधि में परिवर्तन कृषि उत्पादन को प्रभावित कर रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में एकल फसल आधारित प्रणाली अधिक जोखिम पूर्ण हो सकती है। फसल विविधीकरण कृषि प्रणाली का अधिक लचीला बनाने में सहायता कर सकता है। विभिन्न फसलों की जल, तापमान और पोषक तत्वों की आवश्यकताएँ अलग होती हैं। इसलिए एक फसल के प्रतिकूल परिस्थितियों से प्रभावित होने पर दूसरी फसल अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन कर सकती है। विविधीकृत प्रणाली में संसाधनों का उपयोग भी अलग-अलग समय और गहराई पर हो सकता है।

खरपतवारों की दृष्टि से भी बदलती जलवायु परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण हैं। तापमान और नमी में परिवर्तन से खरपतवारों के अंकुरण एवं वृद्धि का समय बदल सकता है। इसलिए ऐसी फसल प्रणालियों की आवश्यकता है जिनमें खरपतवारों का लगातार एक जैसी परिस्थितियाँ न मिले। फसल चक्र और विविधीकृत फसल व्यवस्था इस दिशा में उपयोगी हो सकती है।

समेकित खरपतवार प्रबंधन में फसल विविधीकरण :-

फसल विविधीकरण को समेकित खरपतवार प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण घटक माना जाना चाहिए।

केवल किसी एक विधि पर निर्भर रहने के बजाय विभिन्न विधियों को एक साथ अपनाना अधिक प्रभावी और टिकाऊ हो सकता है। इसके अन्तर्गत उचित फसल चक्र, अंतरफसली खेती, आवरण फसलों का उपयोग, समय पर निराई-गुड़ाई, उचित फसल घनत्व, यांत्रिक नियंत्रण तथा आवश्यकता के अनुसार शाकनाशियों का विवेकपूर्ण प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार खरपतवारों पर विभिन्न दिशाओं से नियंत्रण दबाव बनाया जाता है और किसी एक नियंत्रण विधि के प्रति उनके अनुकूलन की संभावना कम होती है।

समेकित दृष्टिकोण का उद्देश्य खेत से प्रत्येक खरपतवार को पूरी तरह समाप्त करना नहीं बल्कि उसकी संख्या और प्रतिस्पर्धा को आर्थिक रूप से स्वीकार्य स्तर तक सीमित रखना होना चाहिए। कुछ खरपतवार पारिस्थितिकी तंत्र में उपयोगी भूमिका भी निभा सकते हैं। इसलिए खरपतवार प्रबंधन में संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है।

किसानों के लिए व्यावहारिक सुझाव :-

- एक ही फसल को लगातार उगाने के बजाय उपयुक्त फसल चक्र अपनाएँ।
- अनाज आधारित प्रणाली में उपयुक्त दलहनी या अन्य फसलों को शामिल करें।
- स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अंतरफसली खेती अपनाएँ।
- ऐसी आवरण फसलों का चयन करें जो शीघ्र स्थापित होकर पर्याप्त जैवभार उत्पन्न करें।
- खरपतवारों को बीज बनने से पहले नियंत्रित करें।
- एक ही खरपतवारनाशी या एक ही कार्य-विधि पर लगातार निर्भर न रहें।
- फसल की अच्छी स्थापना और शीघ्र छत्र निर्माण पर ध्यान दें।
- खरपतवार प्रबंधन में सांस्कृतिक, यांत्रिक, जैविक एवं रासायनिक विधियों का समन्वय करें।
- नई फसल को अपनाने से पहले उसके बाजार और प्रसंस्करण की संभावनाओं को ध्यान में रखें।
- उपलब्ध आधुनिक तकनीकों का उपयोग करके खेत में खरपतवारों की स्थिति की निगरानी करें।

निष्कर्ष :-

खरपतवार प्रबंधन को केवल शाकनाशियों के प्रयोग तक सीमित रखना दीर्घकाल में टिकाऊ समाधान नहीं है। लगातार एक जैसी फसल और समान प्रबंधन प्रणाली खरपतवारों को अनुकूल होने का अवसर प्रदान कर सकती है। इसके विपरीत, फसल चक्र और फसल विविधीकरण खरपतवारों के जीवन चक्र में व्यवधान उत्पन्न करता है तथा उनके लिए उपलब्ध प्रकाश, जल, पोषक तत्व और स्थान को कम करता है। फसल चक्र, अंतरफसली खेती, आवरण फसल और एलीलोपैथी प्रभावों का उचित उपयोग खरपतवार दमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। साथ ही, खरपतवार बीज बैंक को कम करना और खरपतवारनाशी-प्रतिरोध के विकास को रोकना भी दीर्घकालीन खरपतवार प्रबंधन के लिए आवश्यक है। भविष्य की कृषि में फसल विविधीकरण का आधुनिक सटीक कृषि तकनीकों तथा समेकित खरपतवार प्रबंधन के साथ जोड़ना आवश्यक होगा। इससे न केवल खरपतवारों का प्रभावी का

प्रभावी नियंत्रण किया जा सकेगा, बल्कि कृषि प्रणाली को अधिक उत्पादक, संसाधन-कुशल, पर्यावरण-अनुकूल और जलवायु परिवर्तन के प्रति लचीला बनाया जा सकेगा। अतः “विविधीकृत फसल प्रणाली+समेकित खरपतवार प्रबंधन+आधुनिक तकनीक” टिकाऊ कृषि की दिशा में एक प्रभावी रणनीति हो सकती है।

रबी फसलों में समेकित एवं परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन

¹श्रुति सुमन, ²मैनाक घोष, ³अर्णव रॉय चौधरी, ⁴बीरेन्द्र कुमार, ⁵राजेश कुमार, ⁶संजय कुमार,

एवं ⁷अल्का कुमारी

²वरीय वैज्ञानिक, आई.सी.ए.आर.—उमियाम, मेघालय

³संबद्ध प्राध्यापक—सह—वरीय वैज्ञानिक

¹सहायक प्राध्यापक—सह—कनीय वैज्ञानिक

⁷रिसर्च स्कॉलर

सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर

भारत में रबी मौसम गेहूँ, जौ, चना, मसूर, मटर, सरसों, अलसी, कुसुम तथा अन्य फसलों के उत्पादन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन फसलों की उत्पादकता एवं गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए नाइट्रोजन (N), फास्फोरस (P), पोटैश (K) तथा द्वितीयक और सूक्ष्म पोषक तत्वों की संतुलित उपलब्धता आवश्यक है। केवल अधिक मात्रा में उर्वरक डालना पोषण प्रबंधन नहीं है, बल्कि फसल की वास्तविक आवश्यकता, मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्व, फसल की अवस्था और स्थानिक परिवर्तनशीलता के अनुसार पोषक तत्व उपलब्ध कराना ही वैज्ञानिक पोषक तत्व प्रबंधन का आधार है। पारंपरिक रूप से अनेक क्षेत्रों में उर्वरकों का प्रयोग एक समान या निर्धारित मात्रा के आधार पर किया जाता है। ऐसी blanket recommendation से खेत के उन भागों में भी पोषक तत्व डाल दिए जाते हैं जहाँ उनकी आवश्यकता कम हो सकती है। दूसरी ओर, जहाँ मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी अधिक है, वहाँ समान मात्रा पर्याप्त नहीं हो सकती। इस समस्या का समाधान मृदा परीक्षण आधारित समेकित पोषक तत्व प्रबंधन (INM) तथा परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन (Precision Nutrient Management) के माध्यम से किया जा सकता है।

ICAR भी मृदा परीक्षण आधारित संतुलित एवं समेकित पोषक तत्व प्रबंधन में रासायनिक उर्वरकों के साथ जैविक स्रोतों, जैव उर्वरकों आदि के समन्वित उपयोग पर जोर देता है।

रबी फसलों में परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन की आवश्यकता

रबी फसलों में पोषक तत्वों की आवश्यकता फसल, किस्म, मिट्टी, सिंचाई, मौसम तथा उत्पादन लक्ष्य के अनुसार बदलती रहती है। विशेष रूप से नाइट्रोजन का प्रबंधन चुनौतीपूर्ण है क्योंकि इसकी अधिक मात्रा या गलत समय पर प्रयोग से उपयोग दक्षता घट सकती है और नाइट्रोजन का लीचिंग, वाष्पीकरण तथा अन्य मार्गों से नुकसान हो सकता है। उपलब्ध शोध के अनुसार सामान्यतः अनाज फसलों में नाइट्रोजन उपयोग दक्षता अपेक्षाकृत कम रहती है। मूल अध्याय में बताया गया है कि नाइट्रोजन की आवश्यकता को फसल की मांग के साथ समन्वित करना छन्न बढ़ाने तथा पर्यावरणीय नुकसान कम करने का महत्वपूर्ण उपाय है।

इसलिए रबी फसलों में निम्न प्रश्न महत्वपूर्ण हैं—

कितना पोषक तत्व दें? → कब दें? → किस स्रोत से दें? → कहाँ दें ? → किस आधार पर मात्रा निर्धारित करें?

इन्हीं प्रश्नों का वैज्ञानिक उत्तर परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन प्रदान करता है।

4R सिद्धांत—परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन का आधार

परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन में 4R Nutrient Stewardship अत्यंत उपयोगी सिद्धांत है :

4R सिद्धांत	अर्थ
Right Source	सही स्रोत
Right Rate	सही मात्रा
Right Time	सही समय
Right Place	सही स्थान

ICAR के अनुसार 4R सिद्धांत के अंतर्गत पोषक तत्वों के सही स्रोत, सही मात्रा, सही समय और सही स्थान पर प्रयोग से पोषक तत्व उपयोग दक्षता तथा मृदा स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है।

1. सही स्रोत

मिट्टी एवं फसल की आवश्यकता के अनुसार यूरिया, DAP, MOP, SSP, जैविक खाद, जैव उर्वरक अथवा अन्य उपयुक्त स्रोत का चयन किया जाना चाहिए।

2. सही मात्रा

मात्रा का निर्धारण केवल सामान्य अनुशंसा पर न होकर मृदा परीक्षण, फसल की संभावित उपज, पिछली फसल तथा उपलब्ध पोषक तत्व के आधार पर करना अधिक वैज्ञानिक है।

3. सही समय

फसल की पोषक तत्व मांग पूरे मौसम में समान नहीं रहती। इसलिए विशेषकर N को फसल की अधिक मांग वाली अवस्था में देना अधिक प्रभावी होता है।

4. सही स्थान

पोषक तत्वों को जड़ क्षेत्र के निकट तथा फसल की आवश्यकता के अनुरूप देने से उनकी उपलब्धता एवं उपयोग दक्षता बढ़ाई जा सकती है।

रबी फसलों में पोषक तत्व प्रबंधन की प्रमुख रणनीतियाँ

1. मृदा परीक्षण आधारित पोषक तत्व प्रबंधन

परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन का पहला कदम मृदा परीक्षण होना चाहिए। मृदा परीक्षण से उपलब्ध N, P, K, तथा आवश्यकतानुसार Zn, B, Fe आदि पोषक तत्वों की स्थिति की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरक की मात्रा निर्धारित करने से अनावश्यक उर्वरक प्रयोग कम किया जा सकता है। ICAR की हाल की सलाह में भी किसानों को उर्वरक खरीदने से पहले मिट्टी की जाँच करने और soil & test & based nutrient management अपनाने पर जोर दिया गया है।

2. संतुलित NPK प्रबंधन

केवल नाइट्रोजन पर अधिक निर्भरता के बजाय N, P और K का संतुलित प्रयोग आवश्यक है। किसी एक पोषक तत्व की अधिकता दूसरे पोषक तत्वों के उपयोग को प्रभावित कर सकती है।

रबी फसलों में—

- N मुख्यतः वानस्पतिक वृद्धि, पत्ती क्षेत्र एवं प्रोटीन निर्माण में महत्वपूर्ण है।
- P जड़ विकास, ऊर्जा स्थानांतरण तथा प्रजनन वृद्धि में महत्वपूर्ण है।
- K जल संतुलन, रोग सहनशीलता एवं विभिन्न शारीरिक प्रक्रियाओं में भूमिका निभाता है।
- S विशेष रूप से सरसों जैसी तिलहनी फसलों के लिए महत्वपूर्ण है।
- Zn, B, Fe, Mn आदि सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक होने के बावजूद फसल की वृद्धि एवं उपज के लिए महत्वपूर्ण हैं।

इसलिए रबी फसलों में NPK + S + आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित प्रबंधन किया जाना चाहिए।

3. नाइट्रोजन का परिशुद्ध प्रबंधन

नाइट्रोजन परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण घटक है। उपलब्ध अध्याय के अनुसार फसल की N मांग के साथ उर्वरक आपूर्ति को समय और मात्रा दोनों के स्तर पर मिलाना NUE सुधारने का आधार है।

नाइट्रोजन प्रबंधन के प्रमुख साधन

SPAD Chlorophyll Meter :

SPAD मीटर पत्ती में क्लोरोफिल की स्थिति का गैर-विनाशी आकलन करता है और इसका उपयोग फसल की N स्थिति के आधार पर top & dressing निर्णय में किया जा सकता है।

Leaf Colour Chart (LCC) :

LCC एक अपेक्षाकृत सरल और कम लागत वाला उपकरण है। पत्ती के हरेपन की तुलना करके N की आवश्यकता का अनुमान लगाया जा सकता है।



Chlorophyll Meter



Leaf Colour Chart (LCC)

GreenSeeker एवं Crop Circle :

ये canopy sensors फसल की हरियाली एवं vegetation indices के आधार पर N status के आकलन में उपयोगी हैं।

गेहूँ में SPAD आधारित परिशुद्ध N प्रबंधन

गेहूँ एक प्रमुख रबी फसल है और पूर्वी भारत में SPAD & आधारित N प्रबंधन पर शोध विशेष रूप से प्रासंगिक है। अध्ययन में SPAD threshold 40 को बनाए रखते हुए 25 kg N/ha की आवश्यकता—आधारित top & dressing रणनीति से 4483 kg/ha गेहूँ उपज प्राप्त हुई तथा पारंपरिक अनुशंसा की तुलना में 22.5 kg N/ha की बचत हुई। इसी उपचार में agronomic N & use efficiency में 58.5% सुधार रिपोर्ट किया गया।

इससे स्पष्ट होता है कि गेहूँ में “कैलेंडर के अनुसार N देना” के बजाय “फसल की वास्तविक N आवश्यकता देखकर N देना” अधिक परिशुद्ध —ष्टिकोण हो सकता है।

रबी फसलों में INM और Precision Agriculture का समन्वय

समेकित एवं परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन एक—दूसरे के विकल्प नहीं हैं, बल्कि एक—दूसरे के पूरक हैं। INM बताता है—पोषक तत्व कहाँ—कहाँ से आएँगे।

Precision Nutrient Management बताता है—कितना, कब और कहाँ देना है।

इसलिए एक प्रभावी प्रणाली में निम्न क्रम अपनाया जा सकता है:

मृदा परीक्षण → फसल एवं उपज लक्ष्य → पोषक तत्व बजट → जैविक/जैव स्रोतों का आकलन → रासायनिक उर्वरक की आवश्यकता → फसल की निगरानी → sensor/SPAD/LCC आधारित समायोजन → उपज एवं NUE का मूल्यांकन

मूल अध्याय में भी integrated nutrient management तथा precision farming को NUE सुधारने के प्रभावी उपायों के रूप में बताया गया है।

डिजिटल तकनीकों की भूमिका

भविष्य में रबी फसलों में परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन केवल PAD मीटर तक सीमित नहीं रहेगा। Remote sensing, GIS, GPS, drones, satellite imagery, IoT तथा Artificial Intelligence जैसे उपकरण खेत की स्थानिक एवं समयगत परिवर्तनशीलता को समझने में सहायता कर सकते हैं।

NDVI जैसे vegetation indices फसल की वृद्धि एवं N status के आकलन में उपयोगी हैं। मूल श्रोत में GreenSeeker, Crop Circle, optical sensors तथा remote sensing आधारित approaches को precision N management के लिए उपयोगी बताया गया है।

इससे भविष्य में Variable Rate Fertilization (VRF) को बढ़ावा मिल सकता है, जिसमें पूरे खेत में एक समान मात्रा देने के बजाय अलग-अलग management zones के अनुसार उर्वरक दिया जाता है।

पर्यावरणीय एवं आर्थिक लाभ

परिशुद्ध एवं समेकित पोषक तत्व प्रबंधन का उद्देश्य केवल अधिक उपज प्राप्त करना नहीं है, बल्कि उत्पादन, लाभ और पर्यावरणीय सुरक्षा के बीच संतुलन स्थापित करना है।

अधिक N प्रयोग से nitrate leaching] ammonia volatilization तथा nitrous oxide emissions जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। मूल अध्याय में crop demand से अधिक N प्रयोग को मृदा अम्लीकरण, N leaching तथा N₂O emissions सहित पर्यावरणीय समस्याओं से जोड़ा गया है।

परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन से—

उर्वरक की बचत → NUE में वृद्धि → उत्पादन लागत में कमी → पोषक तत्वों के नुकसान में कमी → मृदा स्वास्थ्य में सुधार → पर्यावरणीय सुरक्षा → टिकाऊ उत्पादन
जैसी श्रृंखला स्थापित की जा सकती है।

निष्कर्ष

रबी फसलों की टिकाऊ उत्पादकता के लिए केवल अधिक उर्वरक प्रयोग करना समाधान नहीं है। “जितना आवश्यक हो, उतना ही और जहाँ आवश्यक हो, वहाँ तथा सही समय पर” पोषक तत्व उपलब्ध कराना आधुनिक कृषि की आवश्यकता है। समेकित पोषक तत्व प्रबंधन रासायनिक, जैविक एवं जैव श्रोतों को एकीकृत करता है, जबकि परिशुद्ध पोषक तत्व प्रबंधन मृदा एवं फसल की वास्तविक स्थिति के आधार पर पोषक तत्वों की मात्रा, समय और स्थान को निर्धारित करता है।

विशेष रूप से गेहूँ में SPAD आधारित N प्रबंधन के पूर्वी भारत के परिणाम यह संकेत देते हैं कि फसल की वास्तविक N आवश्यकता के आधार पर top & dressing करने से उर्वरक उपयोग दक्षता में सुधार और N की बचत संभव है।

अतः रबी फसलों में मृदा परीक्षण + INM + 4R सिद्धांत + फसल निगरानी + SPAD/LCC/सेंसर आधारित N प्रबंधन + डिजिटल कृषि का समन्वय भविष्य की अधिक दक्ष, लाभकारी और पर्यावरण-अनुकूल कृषि की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

फॉल आर्मी वर्म (सैनिक कीट) से मक्का फसल की सुरक्षा: एक समेकित मार्गदर्शिका

¹मुन्ना यादव, ²पंकज कुमार, ³स्नेहा कुमारी, ⁴एस.एम.रहमान, ⁵एम.एम.राशिद, ⁶मो. अरशद अनवर,

⁷मीना कुमारी, ⁸अवधेश कुमार,

सहायक प्राध्यापक—सह—कनीय वैज्ञानिक

मंडन भारती कृषि महाविद्यालय, अगवानपुर, सहरसा

मक्का भारत की एक महत्वपूर्ण फसल है, जिसे पहाड़ी तथा मैदानी दोनों क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर उगाया जाता है। यह मुख्यतः खरीफ मौसम की फसल है, लेकिन सिंचाई की उचित व्यवस्था होने पर इसकी खेती साल भर भी की जा सकती है। मक्का न केवल मनुष्यों बल्कि पशुओं के लिए भी प्रमुख आहार का स्रोत है और इसका उपयोग खाद्य पदार्थों से लेकर औद्योगिक क्षेत्रों तक तेजी से बढ़ रहा है। मक्का कार्बोहाइड्रेट का उत्तम स्रोत होने के कारण इस पर अनेक कीटों का आक्रमण होता है, जिनमें सैनिक कीट (फॉल आर्मी वर्म) सबसे प्रमुख और खतरनाक कीटों में से एक है। यह एक बहु-फसल भक्षी कीट है, जो मुख्यतः मक्का एवं ज्वार पर आक्रमण करता है तथा इनकी अनुपस्थिति में धान, गेहूँ, बाजरा जैसी घास कुल की फसलों पर भी जीवित रह सकता है। इसका प्रकोप बहुत तेजी से फैलता है और अधिक होने पर यह एक ही रात में फसल को भारी नुकसान पहुँचा सकता है। यदि समय पर इसकी पहचान और नियंत्रण नहीं किया गया, तो यह मक्का सहित अन्य फसलों के लिए भी गंभीर खतरा बन सकता है।

सैनिक कीट (Fall Armyworm) की पहचान एवं जीवन चक्र

सैनिक कीट (फॉल आर्मी वर्म) मक्का सहित कई फसलों का अत्यंत हानिकारक कीट है। यह कीट तेज प्रजनन क्षमता और लंबी दूरी तक उड़ान भरने के कारण तेजी से फैलता है। इसकी पहचान इसके जीवन चक्र की चार प्रमुख अवस्थाओं—अंडा, लार्वा (इल्ली), प्यूपा और वयस्क के आधार पर की जाती है।

जीवन चक्र एवं पहचान :

सैनिक कीट का जीवन चक्र लगभग 30 से 60 दिनों में पूरा हो जाता है और अनुकूल परिस्थितियों में वर्ष में कई बार दोहराया जा सकता है।

1. अंडा (Egg stage) : मादा कीट पत्तियों या तनों पर समूह में 50–200 अंडे देती है तथा अपने पूरे जीवनकाल (लगभग 10–12 दिन) में 1000–2000 अंडे तक दे सकती है। अंडे प्रायः पत्तियों की निचली सतह पर पाए जाते हैं और 2–4 दिनों में फूट जाते हैं।
 2. लार्वा (इल्ली) अवस्था (Larval stage) : अंडों से निकली इल्ली 14–22 दिनों तक सक्रिय रहती है और इसी अवस्था में फसल को सर्वाधिक नुकसान पहुँचाती है।
- इसकी सबसे महत्वपूर्ण पहचान सिर पर उल्टे 'Y' (λ) आकार का सफेद निशान है।
 - शरीर पर धारियाँ भी दिखाई देती हैं।

- यह पत्तियों को खाकर छेद बना देती है और गंभीर अवस्था में पूरा पौधा नष्ट कर सकती है।
- 3. **प्यूपा (Pupal stage)** : इल्ली मिट्टी में जाकर प्यूपा बनती है। है। प्यूपा गहरे भूरे से काला रंग का होता है। यह अवस्था 7–13 दिनों तक रहती है।
- 4. **वयस्क (Adult moth)** : प्यूपा से निकलकर वयस्क नर व मादा सैनिक कीट बनता है। नर कीट के पंखों पर सफेद निशान होते हैं जबकि मादा में नहीं होते। इस तरह इस कीट का पूरा जीवन चक्र 30–60 दिनों का होता है।
- यह एक मजबूत उड़कू होता है और 100 किमी या उससे अधिक दूरी तक उड़ सकता है।
- नर पतंगे के पंखों पर हल्के सफेद धब्बे होते हैं, जबकि मादा में ये स्पष्ट नहीं होते।
- वयस्क पुनः अंडे देकर जीवन चक्र को जारी रखते हैं।



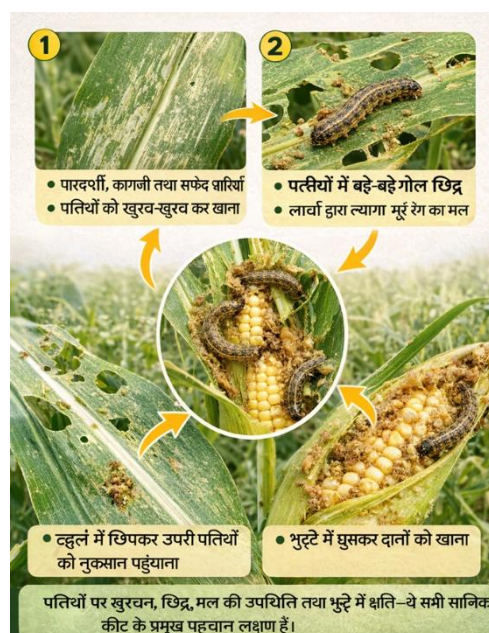
फसल में नुकसान के लक्षण

- पत्तियों पर सफेद या कागजी धारियाँ दिखाई देना
- पत्तियों में बड़े-बड़े छेद होना
- पत्तियों पर काले रंग का कीट मल दिखाई देना
- बड़े लार्वा द्वारा पौधे के शीर्ष भाग और भुट्टे को नुकसान पहुँचाना

पौधों पर सैनिक कीट के लक्षण :

सैनिक कीट का लार्वा (इल्ली) पौधों को विभिन्न अवस्थाओं में गंभीर क्षति पहुँचाता है, जिसके स्पष्ट लक्षण आसानी से पहचाने जा सकते हैं। प्रारंभिक अवस्था में इल्ली पत्तियों की ऊपरी सतह को खुरचकर खाती है, जिससे पत्तियों पर पारदर्शी, कागजी तथा सफेद धारियों (window pane effect) जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

जैसे-जैसे लार्वा विकसित होता है, यह पत्तियों को पूरी तरह काटकर बड़े-बड़े गोल छिद्र बना देता है। साथ ही, पत्तियों एवं पौधों के बीच में भूरे रंग का मल (frass) भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जो इसकी उपस्थिति का महत्वपूर्ण संकेत है। अधिक विकसित अवस्था में लार्वा पौधे के व्हर्ल (मध्य भाग) में छिपकर ऊपरी पत्तियों को नुकसान पहुँचाता है। बाद में यह भुट्टे (काब) में प्रवेश कर



दानों को खाकर भारी आर्थिक क्षति करता है। इस प्रकार, पत्तियों पर खुरचन, छिद्र, मल की उपस्थिति तथा भुट्टे में क्षतिकृये सभी सैनिक कीट के प्रमुख पहचान लक्षण हैं।

सैनिक कीट से बचाव के प्रभावी उपाय

सैनिक कीट से बचाव के लिए समेकित प्रबंधन (Integrated Pest Management) अपनाना सबसे बेहतर तरीका है। सैनिक कीट का लार्वा (इल्ली) अवस्था सबसे अधिक हानिकारक होती है, परन्तु इसके प्रभावी नियंत्रण के लिए इसके जीवन चक्र की सभी अवस्थाओं (अंडा, लार्वा, प्यूपा, वयस्क) को लक्ष्य करना आवश्यक है। इसलिए समेकित कीट प्रबंधन (IPM) अपनाना सबसे प्रभावी रणनीति है।

1. खेत एवं फसल प्रबंधन

- खेत को खरपतवार एवं फसल अवशेषों से मुक्त रखें
- समय पर बुवाई करें, देरी से बुवाई न करें
- नाइट्रोजन का संतुलित उपयोग करें (अधिक प्रयोग से प्रकोप बढ़ता है)
- बुवाई से पहले गहरी जुताई करें, जिससे प्यूपा नष्ट हो जाए

- मक्का के साथ दलहनी फसलों का सहफसलीकरण करें

2. यांत्रिक एवं ट्रैप उपाय

- खेत में 5 ट्रैप (निगरानी हेतु) एवं 15 ट्रैप (नियंत्रण हेतु) प्रति एकड़ फेरोमोन ट्रैप लगाएँ
- खेत के चारों ओर नेपियर घास (3दृ4 पंक्ति) को ट्रैप फसल के रूप में लगाएँ
- अंडों एवं लार्वा को हाथ से चुनकर नष्ट करें
- मक्का की बुवाई के बाद 10 पक्षी बसेरे/एकड़ लगाएँ

3. जैविक एवं पारंपरिक उपाय

- NSKE 5: या नीम तेल (5 मि.ली.धलीटर) का छिड़काव करें
- पत्तियों के कोड़े (whorl) में बालू, राख या सर्फ डालना लाभकारी है
- काली मिर्च, मिर्च पाउडर, नीम, अरंडी व तंबाकू के अर्क का उपयोग करें
- चीनी घोल व मछली सूप का उपयोग प्राकृतिक शत्रुओं (चींटी, ततैया) को आकर्षित करता है

4. जैविक नियंत्रण (Bio-control)

- बेसिलस थुरिजेंसीस (Bt) आधारित उत्पाद (जैसे डाइपेल 8L / डेल्टा 5WG)
- मेटरहाइजियम एनिसोप्लिए (5 ग्राम/ली.)
- नोमुराया रिलेई (3 ग्राम/ली.)

5. रासायनिक नियंत्रण (अधिक प्रकोप की स्थिति में)

- एमामेक्टिन बेंजोएट 5 SG / 0.4 ग्राम/लीटर
- स्पिनोसेड 45 SC / 0.3 मि.ली./लीटर
- क्लोरेनट्रानिलीप्रोल 18-5 SC / 0.4 मि.ली./लीटर

दवाओं का बदल-बदल कर प्रयोग करें, ताकि कीट में प्रतिरोध विकसित न हो।

निष्कर्ष

सैनिक कीट मक्का फसल के लिए एक गंभीर खतरा है, लेकिन समय पर पहचान, नियमित निगरानी और समेकित प्रबंधन (IPM) अपनाकर इसे प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है। किसान भाई शुरुआती अवस्था में ही सतर्क रहें और उपयुक्त उपाय अपनाएँ, तो फसल को बड़े नुकसान से बचाया जा सकता है और उत्पादन में वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है।

अनाज वाली फसलों (Cereal) में पोषक तत्वों का अवशोषण एवं प्रबंधन

सोहम् दत्त¹, अल्का कुमारी¹ एवं श्रुति सुमन²

¹एम.एस.सी. रिसर्च स्कॉलर, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर

²सहायक प्राध्यापक—सह—कनीय वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर

अनाज वाली फसलें (जैसे गेहूँ, धान, मक्का, जौ और बाजरा) वैश्विक खाद्य सुरक्षा का मुख्य आधार हैं। इन फसलों से बेहतर उत्पादन और गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि पौधे मिट्टी से पोषक तत्वों को कैसे ग्रहण करते हैं। मिट्टी में मौजूद पोषक तत्व पानी के माध्यम से पौधों की जड़ों तक पहुँचकर उनके विकास, प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) और दाने बनने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मुख्य पोषक तत्व और उनकी भूमिका

अनाज वाली फसलों को अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए मुख्य रूप से तीन प्राथमिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है:

- **नाइट्रोजन (N):** यह पौधों में प्रोटीन और क्लोरोफिल का मुख्य घटक है। नाइट्रोजन पौधों की वानस्पतिक वृद्धि (Vegetative growth) को तेज करता है, जिससे तना मजबूत होता है और पत्तियों का रंग गहरा हरा हो जाता है।
- **फॉस्फोरस (P):** फॉस्फोरस पौधों की जड़ों के विकास और ऊर्जा हस्तांतरण (ATP निर्माण) के लिए आवश्यक है। यह अनाज की फसलों में कल्ले निकलने (Tillering) और समय पर फसल पकने में मदद करता है।
- **पोटाश (K):** पोटाश पौधों में एंजाइमों को सक्रिय करता है और जल उपयोग क्षमता को बढ़ाता है। यह अनाज की चमक, आकार और वजन बढ़ाने के साथ-साथ फसलों को सूखे और बीमारियों से लड़ने की ताकत देता है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों (Micronutrients) की छिपी हुई भूख (Hidden Hunger)

अनाज वाली फसलों में अक्सर हम केवल नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश (NPK) की बात करते हैं, लेकिन सूक्ष्म पोषक तत्वों की भूमिका को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। लगातार सघन खेती (Intensive farming) के कारण भारतीय मिट्टी, विशेषकर सिंधु-गंगा के मैदानी इलाकों में, सूक्ष्म तत्वों की भारी कमी हो गई है, जिसे पौधों की 'छिपी हुई भूख' कहा जाता है।

- **जिंक (Zinc):** यह पौधों में एंजाइम को सक्रिय करने और वृद्धि हार्मोन (ऑक्सिन) के निर्माण में मदद करता है। धान और गेहूँ में जिंक की कमी से उपज आधी रह सकती है। जिंक की कमी से पत्तियां पीली और भुरी पड़ने लगती हैं। जिंक सल्फेट का प्रयोग दानों की गुणवत्ता और आकार दोनों में सुधार करता है।

- **बोरॉन (Boron):** परागण (Pollination) प्रक्रिया और दानों के भराव के लिए बोरॉन बहुत जरूरी है। इसकी कमी से बालियों में दाने खाली रह जाते हैं या दानों का आकार विकृत हो जाता है।

- **आयरन (Iron) और मैंगनीज (Manganese):** क्लोरोफिल के निर्माण और प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया को सुचारु रूप से चलाने के लिए इन तत्वों की अत्यंत आवश्यकता होती है। क्षारीय मिट्टी में इनकी उपलब्धता कम हो जाती है, इसलिए इन्हें पर्णिय छिड़काव (Foliar spray) के माध्यम से देना अधिक लाभकारी होता है।

पोषक तत्व अवशोषण (Nutrient Uptake) की प्रक्रिया

पौधों की जड़ें मिट्टी से पोषक तत्वों को मुख्य रूप से तीन वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा अवशोषित करती हैं:

- **जड़ अंतरावरोधन (Root Interception):** जैसे-जैसे जड़ें मिट्टी में बढ़ती हैं, वे सीधे पोषक तत्वों के संपर्क में आती हैं और उन्हें सोख लेती हैं। हालांकि, इस प्रक्रिया द्वारा कुल पोषक तत्वों का केवल एक छोटा हिस्सा ही अवशोषित होता है।

- **द्रव्यमान प्रवाह (Mass Flow):** जब पौधे वाष्पोत्सर्जन (Transpiration) के माध्यम से पत्तियों से पानी उड़ाते हैं, तो जड़ों द्वारा मिट्टी से पानी तेजी से खींचा जाता है। इस पानी में घुले हुए पोषक तत्व (जैसे नाइट्रोजन और सल्फर) पानी के साथ बहकर जड़ों तक पहुँच जाते हैं।

- **विसरण (Diffusion):** जब जड़ के पास किसी विशिष्ट पोषक तत्व (जैसे फॉस्फोरस या पोटैश) की सांद्रता कम हो जाती है, तो मिट्टी के दूसरे हिस्सों से वह तत्व जड़ की ओर गति करता है। अनाज की फसलों में फॉस्फोरस का अधिकांश अवशोषण इसी प्रक्रिया द्वारा होता है।

अवशोषण को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक

मिट्टी में पोषक तत्वों की प्रचुरता के बावजूद, कई ऐसे कारक हैं जो उनके अवशोषण को धीमा या तेज कर सकते हैं:

- **मृदा का पीएच (Soil pH) :** अधिकांश अनाज वाली फसलों के लिए 6.0 से 7.5 के बीच का पीएच मान आदर्श होता है। अत्यधिक अम्लीय या क्षारीय मिट्टी में कई सूक्ष्म पोषक तत्व (जैसे जिंक और आयरन) पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाते।

- **मिट्टी में नमी (Soil Moisture) :** जल ही वह माध्यम है जिसमें घुलकर पोषक तत्व जड़ों तक पहुँचते हैं। सूखे की स्थिति में विसरण और द्रव्यमान प्रवाह दोनों रुक जाते हैं, जिससे पौधे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं।

- **तापमान (Temperature) :** बहुत कम तापमान जड़ों की कार्यक्षमता को घटा देता है। यही कारण है कि सर्दियों में बोई जाने वाली गेहूँ की फसल में शुरुआत में पोषक तत्वों का उठाव धीमा रहता है।

- **जड़ों का ढांचा (Root Architecture) :** जिन किस्मों की जड़ें अधिक गहरी और घनी होती हैं, वे मिट्टी के बड़े हिस्से से पोषक तत्व खींचने में सक्षम होती हैं। मक्का और गेहूँ में गहरी जड़ प्रणाली सूखे के दौरान भी पोषण बनाए रखती है।

जलवायु परिवर्तन और पोषक तत्व अवशोषण पर इसका प्रभाव (Climate Change Impact)

आज के समय में बदलता मौसम खेती के लिए एक बड़ी चुनौती बन गया है। जलवायु परिवर्तन का सीधा असर पौधों के खाने-पीने, यानी पोषक तत्व ग्रहण करने की क्षमता पर पड़ रहा है। एक किसान को इन बदलावों को समझना बेहद जरूरी है:

- **तापमान में अचानक वृद्धि (Heat Stress) :** जब तापमान जरूरत से ज्यादा बढ़ता है, तो पौधों की जड़ों का विकास धीमा हो जाता है। गर्मी के कारण मिट्टी में नमी तेजी से सूखती है, जिससे 'द्रव्यमान प्रवाह' (डें थ्सवू) की प्रक्रिया बाधित होती है। इस स्थिति में, मिट्टी में खाद मौजूद होने के बावजूद पौधा नाइट्रोजन और कैल्शियम नहीं सोख पाता।

- **सूखा और जल भराव की स्थिति :** सूखे की स्थिति में विसरण (Diffusion) रुक जाता है, जिससे पोटैश और फॉस्फोरस जड़ों तक नहीं पहुँच पाते। दूसरी ओर, भारी बारिश या जल भराव होने पर जड़ों को ऑक्सीजन नहीं मिल पाती। ऑक्सीजन की कमी से जड़ों की श्वसन क्रिया रुक जाती है, जिससे सक्रिय अवशोषण (Active Uptake) बुरी तरह प्रभावित होता है। इसके अलावा, भारी बारिश से नाइट्रोजन बहकर (स्मंभीपदह) जमीन के काफी नीचे चली जाती है।

- **बढ़ता कार्बन डाइऑक्साइड (Elevated CO₂):** वायुमंडल में CO₂ के बढ़ने से पौधों की वानस्पतिक वृद्धि तो होती है, लेकिन कई शोध यह बताते हैं कि इससे अनाज के दानों में प्रोटीन, जिंक और आयरन की मात्रा कम हो रही है। यह मानव स्वास्थ्य के लिए कुपोषण का एक बड़ा कारण बन सकता है।

फसल की विभिन्न अवस्थाओं में पोषण की मांग

अनाज वाली फसलों में पोषक तत्वों की आवश्यकता हर अवस्था में एक समान नहीं होती:

- **अंकुरण से कल्ले निकलने तक (Seedling to Tillering) :** इस अवस्था में जड़ों के तेजी से विकास के लिए फॉस्फोरस की सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

- **तना बढ़ने से लेकर फूल आने तक (Stem Elongation to Flowering) :** यह वह समय है जब फसल को नाइट्रोजन की सबसे अधिक दरकार होती है। इस दौरान नाइट्रोजन की कमी से पैदावार में भारी गिरावट आ सकती है।

- **दाने भरने की अवस्था (Grain Filling) :** इस चरण में पोटैश और सूक्ष्म पोषक तत्वों (जैसे जिंक और बोरॉन) की भूमिका अहम हो जाती है। पोटैश पत्तियों से कार्बोहाइड्रेट को दानों तक पहुँचाने का काम करता है, जिससे दाने पुष्ट और वजनदार बनते हैं।

पोषक तत्व उपयोग क्षमता (NUE) बढ़ाने के उपाय

किसानों को अक्सर यह समस्या आती है कि खेतों में डाले गए उर्वरक का पूरा लाभ फसल को नहीं मिल पाता। पोषक तत्वों के बेहतर अवशोषण के लिए कुछ आधुनिक रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं:

- **मृदा परीक्षण:** अंधाधुंध रासायनिक खादों के प्रयोग के बजाय, मिट्टी की जाँच कराकर केवल उन्हीं तत्वों को डालें जिनकी वास्तव में कमी है।
- **सही समय और सही तरीका:** नाइट्रोजन को एक बार में डालने के बजाय दो-तीन बार (Split application) में दें। फॉस्फोरस को हमेशा बीज के नीचे या पास डालना चाहिए ताकि वह जड़ों को तुरंत उपलब्ध हो सके।
- **जैविक खादों का समावेश:** गोबर की खाद, केंचुआ खाद या हरी खाद का प्रयोग मिट्टी की भौतिक संरचना को सुधारता है। इससे जड़ों का विकास अच्छा होता है और रासायनिक उर्वरकों की प्रभावशीलता भी बढ़ जाती है।
- **जैव-उर्वरकों का उपयोग:** माइकोराइजा (Mycorrhiza) या पीएसबी (PSB) जैसे जीवाणु मिट्टी में पड़े अघुलनशील पोषक तत्वों को घोलकर पौधों तक पहुँचाने में मदद करते हैं।

अनाज वाली फसलों में पोषक तत्वों का सही अवशोषण केवल अधिक उत्पादन के लिए ही नहीं, बल्कि पर्यावरणीय स्थिरता के लिए भी महत्वपूर्ण है। मिट्टी की सेहत, उचित नमी और वैज्ञानिक उर्वरक प्रबंधन के बीच संतुलन बनाकर ही हम फसलों की वास्तविक क्षमता का दोहन कर सकते हैं। संतुलित पोषण से उगाई गई फसल बाजार में अच्छा मूल्य दिलाने के साथ-साथ मानव स्वास्थ्य के लिए भी बेहतर पोषण सुनिश्चित करती है।

अनाज वाली फसलों में अधिकतम उत्पादन के लिए केवल रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं है। पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने और मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए एकीकृत—ष्टिकोण और आधुनिक कृषि तकनीकों का उपयोग अनिवार्य है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM)

फसलों को आवश्यक पोषण प्रदान करने के लिए जैविक, रासायनिक और प्राकृतिक स्रोतों का संतुलित उपयोग एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन कहलाता है।

- **जैविक और रासायनिक का संतुलन:** मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए यूरिया या डीएपी (DAP) जैसे रासायनिक खादों के साथ-साथ गोबर की खाद (FYM), केंचुआ खाद (Vermicompost) और फसल अवशेषों का संयुक्त प्रयोग किया जाता है।
- **हरी खाद (Green Manuring):** अनाज की मुख्य फसल से पहले ढैंचा या सनई जैसी फसलों को उगाकर खेत में जोत दिया जाता है। इससे मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों और नाइट्रोजन की प्रचुर वृद्धि होती है।

- **जैव-उर्वरकों (Bio&fertilizers) का उपयोग:** अघुलनशील तत्वों को पौधों के लिए सुलभ बनाने हेतु बीजों या मिट्टी को राइजोबियम, पीएसबी (Phosphorus Solubilizing Bacteria) और एजोटोबैक्टर से उपचारित किया जाता है।

पोषक तत्व उपलब्धता बढ़ाने की आधुनिक विधियाँ

पारंपरिक तरीकों के अलावा, पोषक तत्वों के नुकसान को रोकने और उनकी अवशोषण क्षमता (Uptake efficiency) को बढ़ाने के लिए कुछ विशिष्ट तरीके अपनाए जाते हैं:

- **स्थान-विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन (INM):** खेत के हर हिस्से की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार पोषक तत्वों का सटीक उपयोग किया जाता है। इसके लिए लीफ कलर चार्ट (LCC) या मृदा सेंसर का उपयोग करके उर्वरकों की मात्रा तय की जाती है।

- **पर्णय छिड़काव (Foliar Spray):** फसल की क्रांतिक अवस्थाओं (जैसे फूल आने के समय) पर नैनो-यूरिया या घुलनशील NPK का पत्तियों पर सीधा छिड़काव किया जाता है, जिससे पोषक तत्व बिना किसी नुकसान के सीधे अवशोषित होते हैं।

- **फसल चक्र और अंतर्वर्ती फसलें:** मक्का या गेहूँ जैसी अधिक पोषण माँगने वाली फसलों के साथ या उनके बाद दलहनी फसलें (जैसे मूंग या मसूर) उगाई जाती हैं, जो वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मिट्टी में स्थिर करती हैं।

पोषण प्रबंधन में आधुनिक तकनीकें और स्मार्ट खेती (Smart Farming & Tech)

पोषक तत्वों के अधिकतम उपयोग (Nutrient Use Efficiency) के लिए अब कृषि में आधुनिक तकनीकों का समावेश किया जा रहा है। पारंपरिक तरीकों को पीछे छोड़ते हुए किसान अब स्मार्ट खेती की ओर बढ़ रहे हैं:

- **कृषि ड्रोन (Agricultural Drones):** नैनो-यूरिया (Nano Urea), नैनो-डीएपी या अन्य तरल उर्वरकों के छिड़काव के लिए ड्रोन का उपयोग एक क्रांति ला रहा है। ड्रोन से खाद का छिड़काव करने पर उर्वरक सीधे पत्तियों पर बहुत ही सूक्ष्म बूंदों के रूप में गिरता है। इससे पर्णय अवशोषण (Foliar uptake) 80–90% तक बढ़ जाता है, समय की बचत होती है और खाद मिट्टी में व्यर्थ नहीं जाती।

- **आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) और ऑप्टिकल सेंसर:** आजकल ट्रैक्टरों पर ग्रीन सीकर (Green Seeker) जैसे सेंसर लगाए जा रहे हैं। ये सेंसर खेत में चलते समय फसल का हरापन मापते हैं और तुरंत बता देते हैं कि खेत के किस हिस्से को कितनी नाइट्रोजन की जरूरत है (Variable Rate Application)। इससे खाद की काफी बचत होती है।

- **बायोफोर्टिफिकेशन (Biofortification):** कृषि वैज्ञानिक अब प्राकृतिक प्रजनन विधियों से अनाज की ऐसी किस्में विकसित कर रहे हैं, जिनकी जड़ें आनुवंशिक रूप से (Genetically) अधिक गहराई तक जाती हैं और मिट्टी में गहराई में छिपे पोषक तत्वों को भी खींच सकती हैं। जिंक और आयरन से भरपूर गेहूँ और धान की नई किस्में इसका बेहतरीन उदाहरण हैं।

बिहार और भारत में सफल केस स्टडीज

विभिन्न क्षेत्रों में किसानों ने इन आधुनिक विधियों को अपनाकर अपनी अनाज वाली फसलों की उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार किया है:

- **मक्का उत्पादन में INM (खगड़िया और बेगूसराय, बिहार):** इन जिलों के किसानों ने रबी मक्का में केवल यूरिया के प्रयोग को कम करके FYM, जिंक सल्फेट और संतुलित NPK का उपयोग शुरू किया। इस बदलाव से मिट्टी की जल धारण क्षमता में सुधार हुआ और दाने के वजन में वृद्धि के साथ कुल उपज में 15–20% की बढ़ोतरी दर्ज की गई।
- **जीरो टिलेज और अवशेष प्रबंधन (रोहतास, बिहार):** धान की कटाई के बाद बिना जुताई (Zero Tillage) मशीन से गेहूँ की बुवाई की गई और फसल अवशेषों को खेत में ही छोड़ दिया गया। इससे मिट्टी में कार्बनिक कार्बन और सूक्ष्मजीवों की गतिविधि में भारी वृद्धि हुई, जिससे पोषक तत्वों का प्राकृतिक चक्रण तेज हुआ।
- **मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का प्रभाव (पंजाब और हरियाणा):** भारत सरकार की इस योजना के तहत किसानों ने मिट्टी की जाँच रिपोर्ट के आधार पर उर्वरक देना शुरू किया। गेहूँ की फसल में नाइट्रोजन के अत्यधिक और असंतुलित उपयोग में कमी आई, जिससे पोषक तत्व उपयोग क्षमता (NUE) में सुधार हुआ और लागत में 10–15% की कमी आई।

निष्कर्ष :

अनाज वाली फसलों में पोषक तत्वों के अवशोषण की प्रक्रिया मिट्टी, पानी, मौसम और सूक्ष्मजीवों के बीच एक बहुत ही जटिल लेकिन खूबसूरत तालमेल है। आज की आवश्यकता यह है कि हम 'जितनी ज्यादा खाद, उतनी ज्यादा उपज' की पुरानी सोच से बाहर निकलें। मिट्टी परीक्षण पर आधारित उर्वरक का प्रयोग, जैविक व रासायनिक खादों का संतुलित उपयोग, और ड्रोन व सेंसर जैसी नई तकनीकों को अपनाकर ही हम भविष्य की खेती को सुरक्षित कर सकते हैं। सही पोषण प्रबंधन केवल उपज बढ़ाने का साधन नहीं है, बल्कि यह हमारी धरती के स्वास्थ्य, पर्यावरण की सुरक्षा और आने वाली पीढ़ियों के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने का सबसे बड़ा कदम है।

संरक्षित खेती : कृषकों के लिए लाभदायक विकल्प

स्वीटी कुमारी¹, गरिमा सिंह¹, रीना रॉय¹, प्रदीप कुमार¹ एवं अलीशा कुमारी²

सहायक प्रध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान) वीर कुंवर सिंह कृषि महाविद्यालय, डुमराँव, बक्सर¹

सहायक प्रध्यापक सह कनीय वैज्ञानिक, बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर, भागलपुर²

हमारे देश में जहाँ आबादी एक अरब पन्द्रह करोड़ से भी अधिक है वहाँ 35–40 प्रतिशत जनसंख्या केवल शहरों में रह रही है। प्रतिदिन गाँव से शहरों की तरफ युवा रोजगार व बेहतर भविष्य की उम्मीद में हजारों की संख्या में विस्थापित हो रहे हैं। यह विस्थापन एक ओर रोजगार के विकल्प पर प्रश्न चिन्ह लगा रहा है वहीं दूसरी तरफ बढ़ती शहरी जनसंख्या खाद्य आपूर्ति पर भी गंभीर दबाव बढ़ा रही है। इस शहरी आबादी में प्रति व्यक्ति कम आय वाले लोग अपनी लगभग 50 से 80 प्रतिशत तक आय भोजन उपलब्ध करने में लगा देते हैं। इस वर्ग के भोजन की गुणवत्ता भी अच्छी नहीं होती जिनमें मुख्य पोषक तत्वों की मात्रा आवश्यकता से कहीं कम होती है।

क्यों करें संरक्षित खेती :- हमारे देश में जितनी भी कृषि नीतियाँ बनी हैं वे मुख्यतः ग्रामीण परिस्थितियों के ही अनुकूल बनी हैं और शहरों में खाद्य आपूर्ति पूर्णतया ग्रामीण उत्पादन पर ही निर्भर है। शहरी क्षेत्रों की खाद्य आपूर्ति के लिए ग्रामीण इलाकों से उन फसलों की आयात तो बिल्कुल ठीक व उचित है जो ज्यादा समय तक खराब न हो परन्तु वे खाद्य पदार्थ जो जल्दी ही खराब हो सकते हैं उनके लिए यदि शहरी क्षेत्रों को ही उनके उत्पादन हेतु उपयोग में लाया जाये तो जल्दी खराब होने वाले कृषि आधारित खाद्य पदार्थ जैसे ताजे फल, सब्जियाँ, फूल इत्यादि बहुत कम समय में ही उपभोक्ता के पास पहुँच जायेंगे। इससे उपभोक्ता को न सिर्फ ताजी खाद्य सामग्री ही मिलेगी बल्कि उत्पादों के दाम भी कम हो जायेंगे तथा तुड़ाई उपरान्त होने वाले नुकसान को भी काफी हद तक कम करने में मदद मिलेगी।

संरक्षित खेती :- जब हम किसी फसल का उत्पादन मुख्य जैविक या अजैविक कारकों से बचाते हुए (सुरक्षा प्रदान करते हुए) करते हैं तो उसे संरक्षित खेती कहते हैं। संरक्षित खेती (Protected Agriculture) में फसलों को मौसम की मार, रोग एवं कीटों के साथ खरपतवारों एवं पशुओं से संरक्षित करके खेती की जाती है। बेमौसम बारिश, आँधी, गर्मी एवं कीटों के प्रकोप से फसलों को बहुत नुकसान होता है। खेती से अच्छा उत्पादन लेने के लिए किसानों को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसे में संरक्षित खेती किसानों के लिए बहुत ही कारगर विधि है। इसमें पॉलीहाउस, ग्रीनहाउस, प्लास्टिक मल्विंग, पुआल एवं सूखे खरपतवारों से मल्विंग, आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता है। संरक्षित खेती में शुरुआत में लागत अधिक आती है लेकिन बाद में मुनाफा भी अधिक होता है। पॉलीहाउस एवं ग्रीनहाउस के निर्माण के लिए सरकार द्वारा सब्सिडी भी दी जाती है। संरक्षित खेती में पॉलीहाउस, ग्रीनहाउस आदि में पौधों के अनुकूल वातावरण तैयार कर के फसलों की खेती की जाती है। संरक्षित खेती में विपरीत मौसम जैसे—पाला, कोहरा, ओला, वर्षा, ठंडी एवं गर्म हवाओं से पौधों का बचाव होता है। खरपतवारों की रोकथाम के लिए भूमि की सतह पर धान की पुआल से मल्विंग की जाती है। इससे पौधों का भी बचाव होता है। संरक्षित

खेती के प्रकार मुख्यतः सब्जी उत्पादन हेतु उचित व उपयुक्त संरक्षित संरचना की आवश्यकता उस क्षेत्र की जलवायु पर निर्भर करती है। लेकिन इसके अतिरिक्त किसान की आर्थिक स्थिति, टिकाऊ व उच्च बाजार की उपलब्धता, बिजली की उपलब्धता, भूमि का प्रकार आदि कारण भी इसकी खेती को निर्धारित करते हैं। सब्जियों के पूरे वर्ष व बेमौसमी उत्पादन हेतु मुख्यतः वातावरण अनुकूलित ग्रीनहाउस, प्राकृतिक वायु संवाहित ग्रीन हाउस, कम लागत वाले पॉली हाउस, वाक-इन-टनल, कीट अवरोधी नेट हाउस, प्लास्टिक लो-टनल आदि को आवश्यकतानुसार वर्षभर व मुख्यतः बेमौसमी सब्जी उत्पादन हेतु उपयोग में लिया जाता है जिनको हमारे देश के विभिन्न शहरी क्षेत्रों में अपनाने की अपार संभावनाएँ हैं। संरक्षित खेती नई तकनीक की खेती है। फसलों और आवश्यकता के अनुसार यह कई प्रकार से की जाती है। जैसे—

(1) अर्ध वातानुकूलित ग्रीन हाउस :- यह एक ऐसा ग्रीनहाउस है जिसमें गर्मी के दिनों में ग्रीनहाउस के अन्दर तापमान को नियंत्रित करने के लिये कूलिंग पैड लगे होते हैं तथा सामान्य गर्मी के समय यह घर में उपयोगी कूलर के आधार पर ही कार्य करता है। लेकिन यह कूलिंग तब अच्छी प्रकार से कार्य करती है जब हवा में नमी कम हो (आर्द्रता 30 प्रतिशत या इससे कम हो)। आमतौर पर इस प्रकार के ग्रीनहाउस में बड़े आकार का टमाटर, चेरी टमाटर, लाल व पीले रंग की शिमला मिर्च आदि फसलों को वर्ष भर के लिये उगाया जाता है तथा अधिक उत्पादन के साथ-साथ अधिक गुणवत्ता वाली सब्जियाँ भी पैदा की जाती हैं। टमाटर व शिमला मिर्च को ऐसे ग्रीनहाउस में उगाने हेतु उसमें लगातार कटाई-छंटाई का कार्य किया जाता है अन्यथा उपज व गुणवत्ता दोनों में ह्रास होता है। ये कृषि क्रियाएँ प्रत्येक 10-15 दिनों के अन्तराल पर की जाती हैं।

(2) प्राकृतिक वायु संवाहित ग्रीनहाउस :- इस प्रकार के ग्रीनहाउस या संरक्षित संरचनाओं को बनाने पर सामान्यतः वातानुकूलित ग्रीनहाउस के मुकाबले एक तिहाई या एक चौथाई से भी कम लागत आती है तथा इस प्रकार के ग्रीनहाउस को चलाने हेतु या तो ऊर्जा की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है या केवल हवा को बाहर निकालने वाले पंखों को चलाने हेतु बहुत कम ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। सामान्य रूप से इस प्रकार का अच्छा व उपयुक्त ग्रीनहाउस बनवाने पर 600 से 650 रुपये प्रति वर्गमीटर के हिसाब से खर्चा होता है। इस प्रकार के ग्रीनहाउस में उच्च गुणवत्ता वाले बीज रहित खीरे की फसल को वर्ष में तीन बार उगाया जा सकता है। खीरे की पहली फसल की रोपाई अगस्त के प्रथम सप्ताह में तथा दूसरी फसल की रोपाई मध्य अक्टूबर से अक्टूबर के तृतीय सप्ताह तक तथा तीसरी फसल की रोपाई फरवरी प्रथम सप्ताह में की जा सकती है। इसके अतिरिक्त इसमें बेमौसमी शिमला मिर्च, खरबूजा व अन्य बेल वाली सब्जियों को भी सरलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इस प्रकार के ग्रीनहाउस पर उत्पादन लागत कम आने के कारण उत्पादक फसल की कम अवधि होने के बावजूद अधिक लाभ कमा सकते हैं। अतः इस प्रकार की संरक्षित संरचनाएँ इन क्षेत्रों के लिये अत्यन्त उपयुक्त हैं, जहाँ इन्हें फसल उत्पादन हेतु ठण्डा या गर्म करने की आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार के ग्रीनहाउस के रख-रखाव में भी ज्यादा

खर्चा व कठिनाई नहीं होती है। इस प्रकार के ग्रीनहाउस अन्य क्षेत्रों जहाँ बिजली वितरण की काफी कमी है, के लिये भी बहुत उपयुक्त सिद्ध हो सकते हैं।

(3) वाक-इन-टनल :- ये आधा इंच मोटाई की जी.आई. पाइपों को अर्ध गोलाकार मोड़कर तथा उन्हें सरिया के टुकड़ों के सहारे खेत में खड़ा करके व प्लास्टिक से ढँककर बनाई जाने वाली संरक्षित संरचनाएँ हैं। इनकी मध्य में ऊँचाई लगभग 6 से 6) फुट तथा जमीन पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक चौड़ाई 4.0 से 4.5 मीटर तक ही सम्भव होती है। इस प्रकार की संरचनाओं को सर्दी के मौसम में बेमौसमी सब्जी जैसे खरबूजा, तरबूज, खीरा, चप्पन कद्दू या अन्य कद्दूवर्गीय सब्जियाँ उगाने के लिये उपयोग में लाया जा सकता है। वाक-इन टनल की लम्बाई आवश्यकतानुसार बढ़ाई जा सकती है। लेकिन सामान्यतः इनकी लम्बाई 20 से 25 मीटर तक ही रखी जाती है। इन संरचनाओं के बनाने पर काफी कम लागत आती है। इनकी देखभाल भी सरलतापूर्वक की जा सकती है। लेकिन इन संरचनाओं का उपयोग केवल सर्दी के मौसम में ही फसल उत्पादन हेतु किया जा सकता है। क्योंकि गर्मी के समय में जब बाहर का तापमान बढ़ता है तो टनल के अन्दर तापमान बहुत अधिक बढ़ जाता है जिसके कारण किसी भी फसल को उसके अन्दर उगाना संभव नहीं होता है। अतः इनका उपयोग केवल सर्दी के मौसम में बेमौसमी उत्पादन हेतु किया जाता है लेकिन सर्दी के मौसम में इनमें दूसरी सब्जियों को भी उगाया जा सकता है।

(4) कीट अवरोधी नेट हाउस :- इस प्रकार की संरचनाओं को बनाने के लिये आधा इंच मोटाई की जी.आई. पाइपों को अर्धगोलाकार रूप में मोड़कर, जमीन में गाड़े गए सरिए के टुकड़ों के सहारे खड़ा किया जाता है तथा इस प्रकार पाइपों को 2.0 से 2.5 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। फिर इन्हें कीट अवरोधी नाइलोन नेट से ढँका जाता है। जाली को प्रति वर्ग इंच भाग में बने छिद्रों के आधार पर उपयोग में लिया जाता है तथा जिस जाली में 40 से 50 छिद्र प्रति इंच के हिसाब से हों (40 अथवा 50 mesh size) उससे ही इसे ढँका जाता है। इस प्रकार की संरचनाओं में बरसात या उसके बाद विषाणु रोगों से फसलों को बचाने के लिये इनमें उगाया जाता है। बरसात या बरसात के बाद मध्य अक्टूबर तक अनेक कीटों खासकर सफेद मक्खी जो विषाणु रोग को फैलाती है, की जनसंख्या बहुत ज्यादा बनी रहती है। अधिकतर किसानों को बरसात के मौसम में टमाटर तथा भिण्डी आदि फसलों को उगाने में इन कीटों खासकर सफेद मक्खी के कारण बहुत कठिनाई होती है। अधिकतर किसान टमाटर जैसी फसल को इस मौसम में विषाणु रोग के कारण उगाने में असफल रहते हैं। लेकिन यदि किसान कम से कम टमाटर, मिर्च, शिमला मिर्च आदि फसलों की पौध इस प्रकार की संरक्षित संरचनाओं (नेट हाउस) के अन्दर तैयार करें, ताकि पौध को पूर्ण रूप से विषाणु रोग रहित तैयार किया जा सके। यदि किसान विषाणु रोग रहित स्वस्थ पौध की रोपाई मुख्य खेत में करते हैं तो बाद में कुछ कीटनाशकों का छिड़काव करके विषाणु रोगों को काफी हद तक रोका जा सकता है। क्योंकि आज तक हमारे अधिकतर किसान सभी प्रकार की सब्जियों की पौध खुले खेत में तैयार करते हैं। चाहे बरसात का मौसम हो या ठण्ड का। लेकिन अब बदलाव का समय आ गया है कि वे सब्जियों की पौध को बहुत कम लागत वाली संरचनाओं (नेट हाउस) में ही तैयार करें। यदि कद्दूवर्गीय सब्जियों की बेमौसमी पौध तैयार करनी है तो वे वाक-इन-टनल रूपी

संरक्षित संरचनायें बनाकर उनमें तैयार कर सकते हैं तथा ऐसी पौध की आवश्यकतानुसार खेत में रोपाई की जा सकती है। ठीक वाक-इन-टनल की ही तरह नेट-हाउस की चौड़ाई व ऊँचाई बढ़ाना सम्भव नहीं है, लेकिन इनकी लम्बाई को आवश्यकतानुसार बढ़ाना सम्भव है। दूसरी तरफ इन नेट-हाउस को सर्दी के मौसम में ऊपर प्लास्टिक ढँककर ही वाक-इन-टनल भी बनाना सरलतापूर्वक सम्भव है।

(5) प्लास्टिक लो-टनल :- लो-टनल ऐसी संरक्षित संरचनायें हैं जिन्हें मुख्य खेत में फसल की रोपाई के बाद प्रत्येक फसल क्यारियों के ऊपर फसल को कम तापमान से होने वाले नुकसान से बचाने के लिये कम ऊँचाई पर प्लास्टिक ढँककर बनाया जाता है। ऐसी संरचना बनाने के लिये पहले क्यारियाँ तैयार की जाती हैं, तथा उन पर ड्रिप सिंचाई हेतु पाइप फैलाकर उन पर पतले तार के हुप्स इस प्रकार लगाये जाते हैं जिससे हुप्स के दोनों सिरों की दूरी 40 से 60 सें.मी. रहे तथा इनको 1.5 से 2.0 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है। हुप्स, तार को मोड़कर भी बनाये जा सकते हैं तथा उन्हें 2.0 से 2.5 मीटर की दूरी पर थोड़ा सा अधिक ऊँचाई (60 सें.मी.) पर लगाया जाता है। बाद में बेल वाली सब्जियों की तैयार पौध मुख्य खेत में रोपाई करके दोपहर बाद क्यारियों पर प्लास्टिक चढ़ाया जाता है। प्लास्टिक की मोटाई 20-30 माइक्रोन होनी चाहिए तथा लो-टनल बनाने के लिए हमेशा पारदर्शी प्लास्टिक का ही प्रयोग करें। यदि रात को तापमान 5.0 डिग्री से. से कम है तो 7 से 10 दिन तक प्लास्टिक में छेद करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन उसके बाद प्लास्टिक में पूर्व दिशा की ओर चोटी से नीचे की ओर छोटे-छोटे छेद कर दिये जाते हैं तथा जैसे-जैसे तापमान बढ़ता है इन छेदों का आकार भी बढ़ाया जाता है। पहले छेद 2.0 से 3.0 मीटर की दूरी पर बनाये जाते हैं, बाद में इन्हें 1.0 मीटर की दूरी पर बना दिया जाता है। इस प्रकार पूरी प्लास्टिक को आवश्यकतानुसार तथा तापमान को ध्यान में रखते हुए फरवरी के अन्त या मार्च के प्रथम सप्ताह में फसल के ऊपर से पूर्ण रूप से हटा दिया जाता है। इस समय तक फसल काफी बढ़ चुकी होती है तथा उससे फल स्थापन प्रारम्भ हो चुका होता है। इस प्रकार की संरक्षित संरचनाओं में मुख्यतः खरबूजा, कद्दू, खीरा, तरबूज, करैला, टिण्डा, लौकी व अन्य कद्दूवर्गीय सब्जियों को मुख्य मौसम से 30 से 60 दिन पहले उगाया जा सकता है। इस प्रकार इन फसलों के बाजार से अधिक भाव लेकर अधिक लाभ कमाया जा सकता है। टनल बनाने से पौधों के आसपास का सूक्ष्म वातावरण काफी बदल जाता है तथा दिन के समय जब अच्छी प्रकार से धूप निकलती हों तो टनल के अन्दर का तापमान 10 से 12 डिग्री बढ़ जाता है जिससे कम तापमान होते हुए भी इन फसलों की बढ़वार तेजी से होती है तथा रात के समय टनल में पौधों का पाले से बचाव भी होता है।

(6) शेडनेट :- संरक्षित खेती में सामान्यतः शेडनेट का उपयोग अत्यधिक गर्मी के मौसम में कुछ सब्जियों के उत्पादन के लिए किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य ऐसी सब्जियों को अधिक तापमान तथा प्रकाश की अधिक तीव्रता के रहते सफल उत्पादन करना होता है। ऐसे शेडनेट्स के उपयोग द्वारा गर्मी के मौसम में (मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर) हरा धनिया, पालक अगेती मूली, अगेती फूल गोभी या अगेती गाजर जैसी फसलों का उत्पादन करना संभव है। अन्यथा ऐसे मौसम में खुले वातावरण में इन फसलों का उत्पादन करना लगभग असंभव होता है इसलिए इन महीनों के अन्तर्गत इन सब्जियों के भाव बहुत

अधिक हो जाते हैं। अतः इस प्रकार के शेड नेट्स के प्रयोग द्वारा खेती करने से अधिक लाभ लेना संभव है। मुख्यतः इसके लिए 40–50 प्रतिशत छाया करने वाले नेट को उपयोग में लिया जाता है। वैसे छाया की तीव्रता, उगाई जाने वाली फसल पर भी निर्भर करती हैं।

आधुनिक तकनीक द्वारा पौध तैयार करने के लाभ

1. इस प्रकार पौध को कम समय में तैयार किया जा सकता है तथा खासकर सर्दी के मौसम में जहाँ बाहर खुले वातावरण में क्यारियों में टमाटर जैसी फसल की पौध तैयार करने में 50 से 60 दिन लगते हैं। इस तकनीक द्वारा केवल 28 से 30 दिन में स्वस्थ व उच्च गुणवत्ता वाली पौध तैयार हो जाती हैं।
2. बीज की मात्रा को भी काफी कम किया जा सकता है क्योंकि इस विधि द्वारा प्रत्येक बीज को अलग-अलग छेदों में बोया जाता है जिससे प्रत्येक बीज स्वस्थ पौध देता है।
3. पौध को समस्त प्रकार के भू-जनित रोगों व कीटाणुओं से बचाया जा सकता है तथा सबसे महत्वपूर्ण यह है कि पौध को विषाणु रोगों के प्रकोप से बचाया जा सकता है।
4. जब पौध बाहर क्यारियों में तैयार की जाती है, तो पौध को उखाड़ते समय जड़ आदि टूटने से पौधों की मरण क्षमता लगभग 10 से 15 प्रतिशत रहती है। लेकिन इस तकनीक द्वारा तैयार पौध में एक भी पौध के मरने की संभावना नहीं रहती है। इससे पौध को रोपक झटका भी नहीं लगता है।
5. इस प्रकार तैयार पौध मुख्य खेत में रोपाई के बाद बहुत कम समय में स्थापित हो जाती है जब कि बाहर तैयार की गयी पौध को मुख्य खेत में स्थापित होने में कई दिन लग जाते हैं।
7. इस प्रकार संरक्षित पौध तैयार करने की तकनीक द्वारा किसी भी सब्जी फसल की पौध को कभी भी तैयार किया जा सकता है। खासकर मौसम से पहले फसल उगाने हेतु ताकि बेमौसमी सब्जी उत्पादन द्वारा अधिक लाभ कमाया जा सके।
8. इस प्रकार की पौध अधिक गुणवत्ता वाली होती है जिससे अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।
9. इस प्रकार तैयार पौध को सही प्रकार से पैकिंग के बाद काफी दूर ऐसी जगह तक भेजा जा सकता है, जहाँ इसे उस मौसम में तैयार करना संभव न हो या फिर ऐसी तकनीक उपलब्ध न हो।
10. सब्जियों में संकर किस्मों के बीज बहुत महँगे होने के कारण यह तकनीक किसी भी प्राकृतिक नुकसान से बचाने में पूर्णतया सक्षम है।
11. इस विधि द्वारा पौध की बढ़वार को पूर्णरूप से नियंत्रित किया जा सकता है।
12. यदि किसी बीज लाट में अंकुरण की क्षमता तो है लेकिन ओज कम है तो भी इस विधि द्वारा ऐसे बीज से स्वस्थ पौध तैयार करना सम्भव है।
13. इस विधि में कम खाद व पानी की आवश्यकता होती है।
14. इस विधि में पौध की बढ़वार को एक समान बनाया जाता है, ताकि मुख्य खेत में रोपाई के बाद भी फसल की बढ़वार एक समान हो।
15. सब्जियों की संरक्षित खेती हेतु पौध तैयार करने की यह आवश्यक व एक मात्र विधि है।

सारांश

बड़े शहरों के उपभोक्ताओं की मांग को ध्यान में रखते हुए, समय आ गया है कि शहरी क्षेत्रों में उच्च गुणवत्ता वाली सब्जियों का उत्पादन किया जाये जिसके लिए संरक्षित कृषि एक कारगर व आकर्षक विकल्प है। संरक्षित खेती द्वारा इन क्षेत्रों में खेती करने वाले, किसान उच्च गुणवत्ता वाली सब्जियों, फूलों तथा फलों को लम्बी अवधि तक उगाकर तथा बेमौसमी खेती करके उपलब्ध उच्च बाजारों से अधिक लाभ कमा सकते हैं।



किसान हेल्प लाइन
1800 345 6455



बीएयू एगो डॉक्टर
7004528893



बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर
भागलपुर

Follow us:



bausabourofficial



Bau_sabour



bausabourofficial



bausabour



bausabourofficial